॥217॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापु

मानस-दसरथ

कोलकाता (पश्चिम बंगाल)

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ । बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी । हृदयँ भगति मति सारँगपानी ॥

|| **रामकथा** ||
मानस-दसरथ

मोरारिबापू
कोलकाता (पश्चिम बंगाल)
दिनांक : २९-११-२०१४ से ७-१२-२०१४
कथा-क्रमांक : ७६७

प्रकाशन :
अगस्त, २०१५

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

राम-कथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क-सूत्र :
ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स
स्वर अेनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने दिनांक २९-११-२०१४ से ७-१२-२०१४ दरमियान कोलकाता (पश्चिम बंगाल) में रामकथा का गान किया, जो कथा 'मानस-दसरथ' विषय पर केन्द्रित हुई।

'भगवद्गीता' के केन्द्र बिन्दु है-ज्ञान, कर्म और भक्ति। वेद के भी तीन खंड है- ज्ञानकांड, कर्मकांड और भक्तिकांड या उपासनाकांड। जगद्गुरु शंकर ने और शास्त्रों ने दशरथजी को वेदस्वरूप माना है। और दशरथजी की तीन रानियों को ज्ञान, कर्म और भक्तिरूपा बताई गई है। ऐसे कुछ विचार से बापू ने इस कथा की मुख्य चौपाई यह पसंद की-

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ।।
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सारँगपानी।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने दशरथजी का परिचय देते हुए यहां ज्ञान, कर्म और भक्ति का समावेश किया है, वैसे ही बापू ने भी यह तीनों तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में दशरथजी का परिचय करवाया। साथ ही बापू ने चौपाई अन्तर्गत निर्दिष्ट दशरथ वेदविदित है, धर्मधुरंधर है, गुणनिधि है, ज्ञानी है; उनके हृदय में भक्ति है और बुद्धि में सारंगपाणि है, उन सब का भी विशद विश्लेषण किया।

दशरथजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलूंओ को उद्घाटित करने हेतु बापू ने 'दोहावली रामायण' का संदर्भ भी लिया और कहा कि दशरथ सुकामतरु-कल्पतरु है और उसका फल है सकल कल्याण। और दशरथरूपी कल्पतरु से धरणि यानी धैर्य, धाम यानी विश्राम, धन, धर्म, सुत, सद्गुण और रूप जैसे सात निधान-खजानें प्राप्त होते हैं। वैसे ही 'रामाज्ञा-प्रश्न' का संदर्भ देते हुए बापू का कहना हुआ कि दशरथ के राज्य में 'ईति' का भय नहीं था। उनके राज्य में दुकाल नहीं था, मतलब भाव का भीगापन था। दशरथ के राज्य में प्रजा प्रमुदित थी और सब लोग प्रसन्न रहते थे। वहां सब प्रकार का सुख था और सुकाल था।

दशरथजी एक प्रजापालक राजा भी है, पुत्रप्रेमी पिता भी है; रानिओं में विशेषकर कैकेयी के प्रति अतिशय मोहित भी है; एक आदर्श शरणागत शिष्य भी है और वशिष्ठजी के शब्दों में 'पुण्यपुरुष' भी है। बापू ने भी कई प्रसंगों का निर्देश करते हुए दशरथजी के बहुपरिमाणी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला।

'मानस-दसरथ' कथा के माध्यम से श्रोताओं को 'रामचरित मानस' के एक महत्त्वपूर्ण पात्र दशरथजी का विशिष्ट परिचय मिला।

– नीतिन वडगामा

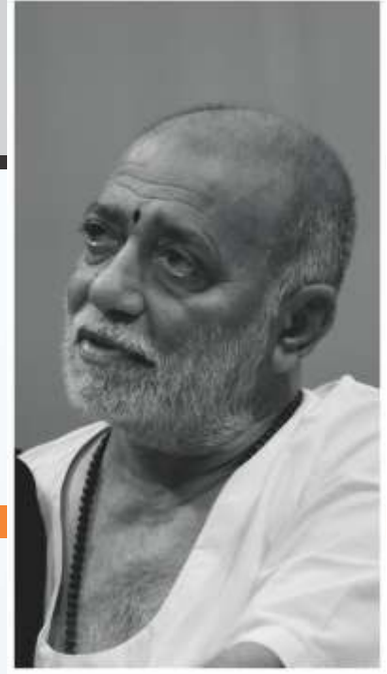

अखंड स्मृति का नाम भजन है,
अखंड विश्वास का नाम भजन है,
अखंड प्रेम का नाम भजन है

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ । बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ।।
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी । हृदयँ भगति मति सारँगपानी ।।

बाप! भगवद्कृपा से इस महाकाल की नगरी में, माँ गंगा की नगरी में, माँ शारदा माँ की नगरी में, ठाकुर रामक्रिष्नदेव की नगरी में, रवीन्द्रनाथ टागोर की नगरी में फिर एक बार रामकथा के माध्यम से आप के साथ कुछ संवाद करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। इस नगरी में रामकथा के आयोजक ये युवागण हर वक्त कथा के लिए जिज्ञासु रहते ही है। कभी मैं कोई जगह बता दूं कि वहां कर लो; कभी कहीं, कभी कहीं। इस बार फिर यहां का योग बना और हम सब नव दिन के लिए रामकथा को केन्द्र में रखते हुए कुछ भगवद्चर्चा विशेष रूप में करेंगे। व्यासपीठ से आप सभी का स्वागत है। सभी को मेरा प्रणाम।

मैं निर्णय नहीं कर पा रहा था कि किस विषय को लेकर बात करूं; यानी कथा ही विषय है लेकिन इनमें से कौन प्रसंग या कौन सूत्र या कौन पात्र को लेकर आप से बातचीत की जाय। व्यासपीठ तक आया तब तक असमंजसता बनी रही। 'गीता-जयंती' के दिन निकट आ रहे हैं। तो सोचा कि 'भगवद्गीता' के कुछ सूत्रों को केन्द्र में रखते हुए राम कथा कही जाय। और 'भगवद्गीता' के केन्द्रबिंदु तीन है, आप जानते हैं, ज्ञान, कर्म, भक्ति। वेद के भी तीन खंड है। एक ज्ञानकांड, एक कर्मकांड। यद्यपि कर्मकांड बहुत समय ले लेता है वेदों में। बहुत संख्या में कर्मकांड की बातें वेदों में आती है। और भावकांड, भक्तिकांड, उपासनाकांड। और मेरे मन में विचार गुरुकृपा से आने लगा कि जगद्गुरु शंकर ने और शास्त्रों ने दशरथजी को वेद स्वरूप माना है। 'वेदो दसरथोनृपः।' दशरथजी की तीन रानियां को ज्ञान, कर्म और भक्तिरूपा बताई गई है। और 'मानस' में भी जिस पंक्ति का आश्रय लिया गया वहां दशरथजी के परिचय में भी ये तीनों कांड, ज्ञान-कर्म-भक्ति, तीनों का समावेश तुलसी ने किया है। वाल्मीकि के दशरथ की वंदना एक और आनंद है, तुलसी के दशरथ के बारे में गाना-बोलना एक और आनंद है। अन्यान्य रामायणों में भी दशरथजी का जीवन-चरित्र बिलग-बिलग रूप में अंकित है। बौद्धकालीन, जैनकालीन जातक कथाओं में भी दशरथ-जातक

मिलता है, जो दशरथजी को एक बिलग ढ़ंग से प्रस्तुत करता है।

तो, इनमें से मुझे लगता है कि दशरथजी के दर्शन से, खास करके 'मानस' के दशरथ से ये ज्ञान-भक्ति-कर्म की चर्चा करूं। तो, मेरे भाई-बहन, मैं इस कथा में विषय निर्णित कर रहा हूं 'मानस-दसरथ।' तुलसीदासजी ने 'स' अक्षर प्रयोजित किया है इसीलिए मैं 'दसरथ' कहूंगा, वर्ना शिष्ट भाषा में 'दशरथ' है। लेकिन आप जानते हैं कि 'रामचरित मानस' में 'श' का उपयोग तुलसी नहीं करते हैं, 'स', देहाती 'स' बोले जा रहे हैं। तो, ये 'दसरथ' सब्ज़ेक्ट जो लिया जा रहा है इसमें बालकों के लिए भी सामग्री है; युवानों के लिए भी बहुत देश-काल अनुसार सामग्री है। और मेरे वंदनीय बूढ़े-बुझर्गों के लिए भी बहुत अधिक सामग्री है। इसीलिए ये तीनों को स्पर्श करनेवाला विषय है।

तो, जिस पंक्तिओं का आश्रय लिया है; आप सब जानते हैं, हरवक्त रामजन्म के प्रसंग में हम जब प्रवेश करते हैं तब ये पंक्तियां अवश्य हम गाते हैं कथा के क्रम में। मैं एक बार फिर ये दोनों पंक्तिओं का गायन कर लूं ताकि आप के मन में ये बात बैठ जाय।

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ।।
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी ।
हृदयँ भगति मति सारँगपानी ।।

तो बाप, दशरथ का जो परिचय 'मानस' में दिया गया उसकी दो पंक्तिओं का बिलकुल सीधा-सादा अर्थ पहले समझ लें। गोस्वामीजी कहते हैं, अवधपुरी, रघुकुल का शासन और वर्तमान सम्राट दशरथ है। लिखा है कि 'बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ।' इस सम्राट का नाम वेदप्रसिद्ध है। कई विद्वानों को तकलीफ़ है! स्वाभाविक है, केवल ग्रंथ तक जिसकी दृष्टि जाएगी उसको तकलीफ़ होना स्वाभाविक है। ग्रंथ से पार जाएगा

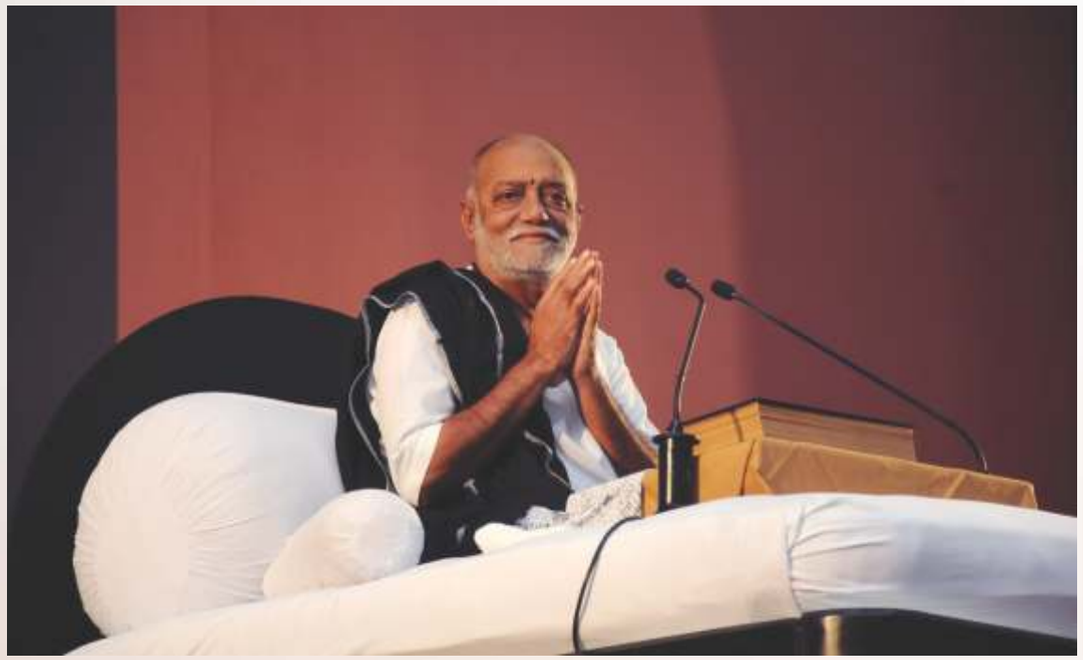

उसको कभी कोई तकलीफ़ नहीं हो सकती क्योंकि ग्रंथ सद्गुरु आश्रित न हो तो ग्रंथि बनाने में देर नहीं करता! एक क्षण में ग्रंथि निर्मित करता है। इसीलिए गुजरात के परम वैष्णव पंद्रहवी शताब्दी के जिसको बहुत इश्वर साक्षात्कार हुआ ऐसे नरसिंह मेहता ने कहा-

ग्रंथ गरबड़ करी, वात नव करी खरी,
जेहने जे गमे तेने पूजे;

तो, जिसकी दृष्टि ग्रंथ तक है उसके मन में ये बात कुबूल न की जाय ऐसा एक तर्क स्वागतयोग्य है, उपेक्षा और आलोचना का कोई कारण नहीं है। इसलिए विद्वान लोग कहते हैं कि दशरथ का नाम वेद में कहां है और गोस्वामीजी क्यों कह देते हैं 'बेद बिदित?' ये प्रश्न अक्सर 'रामायण' जगत में चर्चा में रहा है। यदि कोई ग्रंथ लाकर दिखा भी दे तो कहेंगे ये प्रक्षेप है। आप जानते है, मैंने पहले ही कहा कि हम संवाद करने जा रहे हैं। तो, 'बेद बिदित' दशरथ है; मैं आये दिन उसकी स्पष्टता करता चलूंगा।

तो, अवधपुरी; रघुकुल का शासन। सम्राट दशरथजी जो बेदबिदित-बेदप्रसिद्ध है, धर्मधुरंधर है, यानी कर्मयोगी है। और 'हृदयँ भगति मति सारँगपानी।' उसके हृदय में सारंगपाणि की भक्ति है इसीलिए तीनों योग का समन्वित रूप महाराज दशरथजी है, ऐसा गोस्वामीजी प्रतिपादित करते हैं। तो, ये दोनों पंक्तिओं का सीधा-सादा अर्थ ये है। शास्त्रकारों ने कहा कि कौशल्या 'ज्ञानशक्ति' है। सुमित्रा 'उपासनाशक्ति' है। और कैकेयी 'क्रियाशक्ति' है। रामायण-जगत के कई मनीषीओं ने भी उस पर बहुत प्रकाश डाला है। तो, ये ज्ञान, उपासना और कर्म तीनों शक्ति का एक सर्वोपरि स्थान इसका पति दशरथ है, वो वेद है, ऐसा संतों ने कहा है। और मैं बार-बार कह चुका हूं कि जहां ग्रंथ का प्रमाण न मिले वहां पहुंचे हुए संत के हृदय की प्रवृत्ति को प्रमाण माना जाता है।

तो, ये ज्ञान, कर्म और भक्ति के साकार रूप महाराज दशरथजी है। एक अर्थ में ये भी ले कि जिसमें ये तीनों प्रवाह मिलता हो उसके घर में राम का आना स्वाभाविक है। राम का आना मानी आराम का आना; विश्राम, टेन्शनमुक्त जीवन का आना। राम का आना मानी थोड़ा ऐसा समय का प्रवेश हमारे जीवन में जिसमें हमारी ऊर्जा रिचार्ज हो।

मैं युवानों से ओर क्या अपेक्षा करूं? मैं ये कहूं कि हाथ में माला लेकर बैठ जाओ! तिलक लगा लो, हमारी तरह रामनामी रख लो! ये कोई मेरी मांग नहीं है। मेरी इतनी ही बात जरूर आप सुनते हैं तो कि आप थोड़ा रोज अपने लिए समय निकालो। फाधर्स डे! पर्यावरण डे! अभी आप ने कहा वो (वेलेन्टाईन डे)! हमारे लिए कोई दिन नहीं! हम बट गये हैं! दिन में थोड़ा हिस्सा हमारे लिए होना चाहिए। उसी को मैं रामजनम कहता हूं। मेरा रामजनम का मतलब केवल पौराणिक गाथा नहीं है। ये नव दिन अपने लिए है, हमारे लिए है। भक्ति मतलब क्या मेरे भाई-बहन? उपासना का क्या अर्थ? दंभमुक्त जीवनचर्चा उपासना है। फिर दफ्तर में आप काम करो तो आपत्ति नहीं होनी चाहिए। और मैं कुछ समय से सोच रहा हूं, इसीलिए कह रहा हूं भक्ति को भी आप प्लीज़, भजन मत समझना। भक्ति भजन नहीं है; भक्ति भजन तक पहुंचने का मारग है। भक्ति एक विधा है, एक प्रक्रिया है। जैसे कि 'रामचरित मानस' के भक्ति प्रकरण में लिखा है। आप हर जगह 'भक्ति' शब्द पाओगे, 'रति' शब्द पाओगे। 'भजन' शब्द केवल एक बार पाओगे। और वो खास जगह पर लिखा है।

तो, भक्ति एक मारग है। कर्म एक मारग है। ज्ञान एक मारग है। भजन बड़ी दूर नगरी! बड़ी दूर नगरी! शबद भी छोड़ना पड़ता है। आख़िर में तो भजन के मकाम

में जो आदमी प्रवेश करता है उसके सभी शब्द छूट जाते हैं। निझामुद्दिन ओलिया कहते हैं, अमीर, मैं शब्द को सूला देता हूं क्योंकि शब्द मुझे सोने नहीं देता है! तो, भजन कुछ ओर चीज है। भक्ति ये विधा है भजन के महल में प्रवेश करने की। इसीलिए जहां-जहां भक्ति की चर्चा आई है, उपासना की चर्चा आई है वो मारग है, ये पथ है। जैसे तुलसीजी कहते हैं-

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा ।

ये पहली विधा कि अच्छे लोगों का संग करे। लेकिन वो भजन नहीं हो गया। ये मारग है। संत का संग ये विधा है, ये पंथ है। तुलसीदासजी ने दो पंथ की चर्चा की है।

संत संग अपवर्ग के कामी भव कर पंथ ।

कामी का संग भव का रास्ता है। संत का संग अपवर्ग का रास्ता है। ये रास्ते हैं, मंज़िल नहीं है। 'भजन' मेरा बहुत प्यारा से प्यारा शब्द है। राम की तुलना में तो मैं क्या कहूं? फिर भी कहना हो तो 'भजन' शब्द बड़ा प्यारा शब्द है। और युवान भाई-बहन, सज्जन आदमी जिसके प्रति आप को भरोसा बढ़ने लगे, ये भक्ति का एक रास्ता है, वहां पहुंचने का।

दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।

अब ये कथा के प्रसंग मैं आप के सामने बोलूं, पात्र के बारे में बोलूं तो वो भी भक्ति है, ये भी एक मारग है भजन में प्रवेश करने का।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

अपना गुरु, बुद्धपुरुष, जिससे हमें उजाला प्राप्त हुआ है बिना कुछ किये, बेप्रयास ऐसे बुद्धपुरुष की सेवा ये भक्ति है, ये मारग है। चौथी भगति कपट छोड़कर हरि का गुणगान गाना। लेकिन 'भजन' शब्द बिलकुल मध्य में रखते हैं तुलसी। महत्त्व की बात आई तब 'भजन' शब्द का प्रयोग गोस्वामीजी करते हैं-

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा ।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।

साहब! उपासना सांप्रदायिक हो सकती है, भजन कभी सांप्रदायिक नहीं हो सकता। वो बिनसांप्रदायिक क्षेत्र है। जहां कोई मज़हब, कोई फ़िरका, कोई ग्रूप बचता नहीं है।

तो, दृढ़ विश्वास की बात आई, अखंड विश्वास की बात आई, तो तुलसी ने कहा वो 'भजन' है। एक सूत्र हो गया। भजन मानी कोई परम तत्त्व या कहीं भी अखंड, अनवरत, तैलधारावत् भरोसा उसीका नाम भजन है। फिर जप करो, न करो कोई चिंता नहीं। तुम कथा सुनो, न सुनो कोई चिंता नहीं। छोड़ मत देना! मैं इतना बोलूं रामनाम पर और मुझे 'रामायण' पर भरोसा न हो तो खाक्! आप सोचो! अखंड विश्वास भजन है। और मेरा एक वक्तव्य रहा है, मैं पुनः उसको उद्घोषित करता हूं, भजन भगवान का बाप है। भगवान भजन का बच्चा है। गुजरातीमां कहुं तो भजननुं छोरुं परमात्मा छे.

दूसरा सूत्र, मेरे मन में जो आ रहा है वो ये है, अखंड प्रेमधारा जिसे नारदजी कहते हैं; 'प्रतिक्षण वर्धमानं अविच्छिनं...'; गोस्वामीजी जिससे 'छन छन नव अनुराग' शब्द से सुशोभित करते हैं। और तीसरा, मेरी समझ में जो उतर रहा है वो मैं आप से शेर कर रहा हूं अखंड सुमिरन, 'अखंड स्मृति', चाहे वो परमात्मा की हो या किसीकी भी हो। अखंड स्थिरता बनी रहे। गुरुकृपा से आती है, ध्यान देना। 'स्मृतिर्लब्धा', सातसौ श्लोक 'गीता' के कथे गये तब करीब-करीब अंत में ये स्मृति आई। तुलसी एक पंक्ति देते हैं 'मानस' में-

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई।
जब तव सुमिरन भजन न होई।।

अखंड सुमिरन का नाम है भजन। अखंड स्मृति पलट जाती है भजन में। ईश्वर को एक ओर छोड़ दो, इसको थोड़ा समय छुट्टी दे दो! व्यक्ति को व्यक्ति में, एक मित्र को मित्र में अखंड भरोसा, बाप को बेटे में अखंड भरोसा, बेटे को अपने बाप में अखंड विश्वास ये भजन है, साहब!

और एक बात ओर भी ध्यान देना, आप सोचिएगा थोड़ा समय खुद के लिए निकालके। भजन साधना भी नहीं है। साधना योग की होती है। साधना प्राणायाम आदि की होती है। साधना तप की होती है। साधना अनुष्ठानों से होती है। भजन कोई साधना नहीं है। समस्त साधना से गुज़रने के बाद जो प्रदेश आता है वो शायद भजन है। इसीलिए इन वक्तव्यों में मुझे बहुत बल मिलता है 'मानस' में कि जब 'मानस' 'भजन' शब्द का प्रयोग करता है, तो खास-खास जगह और खास-खास मुख से बुलवाता है।

निज अनुभव अब कहउ खगेसा ।
बिनु हरिभजन न जाई कलेसा ।।

भुसुंडिजी गरुड से कहते हैं तो 'भजन' शब्द का प्रयोग करके बोलते हैं कि भजन के बिना कलेष जो पतंजलि ने पांच- पांच कलेष की चर्चा की है वो नहीं जाएगा। ये पांच-पांच कलेष, अविद्या भजन के बिना जाती नहीं। वो ही बात भगवान शंकर बहुत पहले कह गये।

उमा कहउ मैं अनुभव अपना ।
सत हरि भजन जगत सब सपना ।।

वहां भी भजन। तो मेरे भाई-बहन, आप यदि याद रखें और थोड़ा उस पर सोचे तो अच्छी बात है कि अखंड भरोसो, बस भजन। केवल माला लेके बैठ जाने की बात नहीं है। ये है उपाय अवश्य, अखंड प्रेमधारा। और तीसरा अखंड स्मृति। माँ को बच्चे को याद करने के लिए कोई खास समय नहीं निकालना पड़ता है, उसकी अखंड स्मृति रहती है। निदा फ़ाजली साहब का एक दोहा है-

मैं रोया परदेश में, भीगा माँ का प्यार।
दिल ने दिल से बात की बिन चिट्ठी बिन तार ।

याद तो रहती है, उसके लिए कोई पिरियड थोड़ा होता है? हमारी तकलीफ़ क्या है, चलो, एक घंटा भगवान को याद कर लें! अच्छा है, चलो; लेकिन भजन नहीं है ये। तो अखंड स्मृति, सुमिरन बना रहे। हमें पता नहीं, रक्तधारा बहती रहती है। सो जाते हैं, सांस चलते रहते हैं। लेकिन व्याख्या सरल है, इस अवस्था को पाना बड़ा मुश्किल है।

तो, अखंड स्मृति का नाम भजन है; अखंड विश्वास का नाम भजन है; अखंड प्रेम का नाम भजन है। और भजन के संतान का नाम है परमात्मा, ईश्वर। क्यों? प्रमाण-

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना ।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ।।

तो, भक्ति ये मारग है भजन तक पहुंचने का। तो, गोस्वामीजी कहते हैं, वेद का ज्ञानकांड, वेद का उपासनाकांड और वेद का क्रियाकांड ये दशरथजी की तीन रानियां है। कौशल्या ज्ञानकांड है। ज्ञान उसको कहते हैं कि जो अंदर से हर्ष-शोक से मुक्त हो जाये; समझ बनी

भक्ति भजन नहीं है; भक्ति भजन तक पहुंचने का मारग है। भक्ति एक विधा है, एक प्रक्रिया है। भक्ति एक मारग है। कर्म एक मारग है। ज्ञान एक मारग है। भजन बड़ी दूर नगरी! बड़ी दूर नगरी! शबद भी छोड़ना पड़ता है। आख़िर में तो भजन के मकाम में जो आदमी प्रवेश करता है उसके सभी शब्द छूट जाते हैं। निझामुद्दिन ओलिया कहते हैं, अमीर, मैं शब्द को सूला देता हूं क्योंकि शब्द मुझे सोने नहीं देता है! तो, भजन कुछ ओर चीज है। भक्ति ये विधा है भजन के महल में प्रवेश करने की।

रहे। 'रामचरित मानस' की माँ कौशल्या में पद-पद पर आप ये विवेक पाओगे। कैकेयी क्रियाशक्ति है। हम सब काम करते हैं। काम करने ही चाहिए। कबीरसाहब का पद का एक टुकड़ा है-

कह कबीर कुछ उद्यम कीजै।

तुम उद्यम करो, तुम पुरुषार्थ करो, कबीर ने कहा। लेकिन क्रियाशक्ति वेद का कांड तब बन सकती है जब क्रियाशक्ति को कोई संगदोष लागू न हो जाये; कर्म तभी पूर्णत: सफल होता है जब कुसंग से बचे। शक्तिशाली है कैकेयी लेकिन जो वेद का एक कांड है वो ही कैकेयी संगदोष के कारण मार खा गई! एक मंथरा के संगदोष ने कहां पहुंचा दिया कैकेयी को? हमारा कर्म कुसंग से बचे।

आज-कल युवान लोग बहुत काम कर रहे हैं। नई-नई चेतनाएं बहुत काम कर रही है। नहीं हो रहा है ऐसा नहीं है लेकिन हमारा सभी पुरुषार्थ वेद का भाग होते हुए भी क्यों हमें सुख नहीं मिल रहा है? हम क्यों शांत नहीं हो पा रहे हैं? क्योंकि कहीं न कहीं संगदोष है, कम्पनी खराब है। कर्म करते थोड़ा कम कमाओ, चिंता नहीं; कंपनी बिगड़ने मत दो। 'रामचरित मानस' में तो वहां तक कह दिया कि नरक में निवास अच्छा है लेकिन दुर्जन का संग बहुत बुरा है। महानगरों की युवानी क्यों भटक गई? संगदोष हमें खाई में डाले जा रहे हैं!

तो, 'मानस-दसरथ' इस कथा का केन्द्रीय संवाद रहेगा। और 'रामचरित मानस' की एक प्रवाही परंपरा है कि पहले दिन वक्ता को चाहिए ग्रंथ का परिचय कराये। आप सब जानते हैं 'मानस' के सात सोपान में ये 'रामायण' को संकलित किया है। 'कांड' शब्द वाल्मीकि का है, तुलसी का नहीं है; तुलसी का तो 'सोपान' है। लेकिन आदत-सी हो गई है कि हम 'कांड' बोल देते हैं, ठीक है। गोस्वामीजी कहते हैं, मैं स्वान्त: सुख के लिए रामकथा गाने जा रहा हूं। फिर संस्कृत देवगिरा को प्रणाम करते हुए रामकथा के श्लोक को लोक तक पहुंचाने के लिए तुलसी ने ग्राम्यगिरा का देहाती प्रादेशिक भाषाओं का उपयोग किया और लोक तक पहुंचने के लिए पांच सोरठें लिखे। गणेशजी की वंदना, सूर्यनारायण की वंदना, विष्णु भगवान की वंदना, शिव-पार्वती की वंदना, पांच देवों की वंदना जो शांकरी परंपरा में आई है उसकी प्रतिष्ठा की। उसके बाद गुरु वंदना की।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।।

'रामचरित मानस' के प्रथम सोपान का प्रथम ये प्रकरण गुरुवंदना, जिसको व्यासपीठ 'मानस गुरुगीता' समझती है। बड़ा अद्‌भुत गुरु के प्रति जो सूत्रात्मक भाव प्रदर्शित किया है। जहां तक मैं अपना विचार करता हूं तो लगता है कि अपने जैसों को कोई मार्गदर्शक चाहिए जो हमें भटकने से बचा दे, जो हमें संभाले। इसीलिए हमारे यहां पावन गुरुपरंपरा आई है। ये 'गुरु' शब्द की बात करता हूं तो बहुत समझकर बोलना पड़ता है। क्योंकि एक बात स्पष्ट हो कि गुरु, गुरु होना चाहिए। एक गुरु वो होता है जिसको 'त्रिभुवन गुरु' कहते हैं कि वो होता है लेकिन महसूस नहीं होने देता कि वो है। उसकी उपस्थिति के बिना हम नहीं है लेकिन पता नहीं लगता है कि कोई किये जा रहा है। दूसरा होता है 'धर्मगुरु', जो पूजा जाता है; उसकी हम पूजा करते हैं, करनी चाहिए; जो हमारे आदर के पात्र है, हमारे पूजनीय है। तीसरे है 'कुलगुरु।' जिससे हम डरते हैं! वो डराते हैं, 'ऐसा नहीं किया तो ये होगा, वो होगा, ये करना पड़ेगा!' जिससे डर लगता है। चौथा गुरु वो है जिसको लोग प्यार करते हैं, वो है 'सद्‌गुरु।' जो पूजा न जाय लेकिन प्यार के काबिल हो। जो डराये ना, धमकाये ना और होते हुए भी पता न लगे कि कोई है।

गोस्वामी कहते हैं, ऐसे सद्‌गुरु, ऐसे बुद्धपुरुष की चरणरज से मेरी दृष्टि को पवित्र करके मैं रामकथा कहने जा रहा हूं। और गुरु की चरणरज से जिसकी दृष्टि पवित्र हो गई उसको पूरा जगत वंद्य लगता है। इसीलिए तुलसी पूरे जगत की वंदना शुरू कर देते हैं। और आख़िर में समग्र ब्रह्ममय विश्व को तुलसी ने प्रणाम किया। फिर 'रामायण' के पात्रों की वंदना तुलसी ने की। दशरथजी की वंदना की। माँ कौशल्यादि रानीओं की वंदना की। ये दशरथजी की वंदना गोस्वामीजी करते हैं वहां एक ही दोहे में ये तीनों सूत्र मिले हैं सत्य, प्रेम, करुणा।

बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ।।

और 'करुणा' शब्द उपर से नहीं मिलेगा लेकिन 'बिछुरत दीनदयाल...' दयालुपना ये करुणावाचक शब्द है। तो पूरे 'रामचरित मानस' में जो व्यासपीठ सतत कहती रही है 'सत्य, प्रेम, करुणा।' यद्यपि ये कोई व्यासपीठ की मौलिक बात नहीं है लेकिन विनोबाजी का मुझे सपोर्ट मिल गया इसीलिए महामुनि का मैं आभारी हूं, ऋणी हूं। लेकिन मेरी अपनी अदा है। मेरे युवान भाई-बहन, सत्य लिया जाय, प्रेम दिया जाय। जहां सत्य मिले, ले लो। हम बोल पाये, न बोल पाये; सत्य जीवन जी सके, न जी सके, छोड़ो लेकिन सत्य कम से कम लिया जाय कि जहां सत्य है उसको ले लो; अनादर न करो, खिड़कियां खूली रखो।

गांधीजी दो बात बहुत सुंदर कहते हैं। वो कहते हैं कि मैं ऐसे मकान में रहता हूं कि जिसकी सभी खिड़कियां खूली है। जगत के तमाम शुभ विचार को मैं स्वीकार करता हूं। बाईबल से मिले, स्वागत; कुर्रान से मिले, स्वागत; धम्मपद से मिले, स्वागत; आगम से मिले, स्वागत। कहीं से भी मिले। लेकिन गांधी की युवान भाई-बहन, एक बात ओर समझे; साथ-साथ कहते हैं, मैं सभी खिड़कियां खूली रखता हूं स्वीकार की लेकिन नींव मजबूत रखता हूं कि ये हवा तूफ़ान बनकर आये तो मुझे गिरा न सके। सत्य लिया जाय और प्रेम दिया जाय। प्रेम मांगो मत, दो। सामने से मिले न मिले, हिसाब-किताब की बात प्रेम में है ही नहीं; दो। सत्य लिया जाय, प्रेम दिया जाय, करुणा में जीया जाय। करुणा में जीओ, बस; कठोरता में नहीं। सत्य, प्रेम, करुणा तीनों शब्दब्रह्म, तीनों मंत्र दशरथ की वंदना तुलसी ने 'बालकांड' में की वहां उपलब्ध है। फिर जनकराज की वंदना की, भरतजी की, लक्ष्मणजी की, शत्रुघ्न की सब की वंदना की। और राम-सीता की वंदना बाद में की; इससे पहले बीच में श्री हनुमानजी महाराज की वंदना तुलसी कथा के क्रम में कर लेते हैं।

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

मैंने अक्सर आप से बातें करते हुए व्यासपीठ से कहा है कि यदि आप गुरुमार्गी होना चाहे और कोई आप को गुरु काबिल न लगे तो छोड़ो सब को, हनुमानजी को गुरु मानो, बस। कभी दक्षिणा लेने न आये! कंठी न बांधे! ऋग्वेद में कहा है गुरु औषधि है। गुरु आप: मानी जल, गुरु पानी है, गुरु हवा है। हद कर दी वेद भगवान ने, गुरु मृत्यु है! खतम करता है गुरु! और बिना खतम किए नवसर्जन असंभव है। आचार्य मृत्यु है, याद रखना। मृत्यु मानी हत्या कर दे नहीं लेकिन मृत्यु यानी हमारे अंदर के कषाय को, विकारों को वो नष्ट कर देता है। हम भी 'विनयपत्रिका' की दो-तीन पंक्तिओं से हनुमानजी की वंदना करके आज की कथा को विराम देते हैं।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

भजन गुणातीत आहार है

'मानस-दसरथ' को केन्द्र में रखते हुए हम 'मानस' के आधार पर संवाद कर रहे हैं। कुछ आगे बढ़ें। बहुत जिज्ञासाएं हैं कल के कथासंदर्भ में; 'बापू, भजन का अर्थ हम क्या करे? भजन यानी प्रार्थना? भजन यानी पुकार? भजन यानी चिंतन? भजन यानी समर्पण? भजन यानी शादी? भजन यानी मन की एकाग्रता? भजन मानी क्या?' ये विषय, भजन के बारे में मुझे बहुत बोलना है। स्वतंत्र रूपेण एक कथा, जिसमें केवल भजन का ही दर्शन हो लेकिन जब परमात्मा चाहे। यहां तो कल का संदर्भ आ गया था तो मैं बोल रहा था। 'रामचरित मानस' में भी कई बार असमंजसता पैदा हो सकती है भजन और भक्ति के बारे में क्योंकि 'मानस' के वरिष्ठ पात्र, पहुंचे हुए पात्र करीब-करीब भगवान की स्तुति करके भक्ति की ही मांग कर रहे हैं, भजन की मांग नहीं। कभी-कभी भक्ति ये भजन का पर्याय भी है। प्रत्येक शब्दब्रह्म को पात्र-घटना के संदर्भ में देखना पड़ता है। अब आप ने तो कोई प्रश्न नहीं उठाया है लेकिन मैं आप के सामने एक असमंजसता 'मानस' से पेश करूं कि एक जगह तो ऐसा लिखा है बाप, भजन के बिना भक्ति नहीं होगी। और मैं कह रहा हूं कि भक्ति है पथ भजन तक पहुंचने का। और फिर भजन की संतान है परमात्मा। और 'मानस' के आप पारायण करते रहते हैं, सुनते रहते हैं, स्वाध्याय है आप का तो एक जगह ऐसा लिखा है कि-

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।

वहां कहा गया कि शंकर के भजन बिना भक्ति प्राप्त नहीं होगी। अब असमंजस, कन्फ्यूज़ हम हो सकते हैं। लेकिन नारद, शांडिल्य, अंगीरा आदि महापुरुषों ने भक्ति का जो दर्शन व्यक्त किया है, उसमें भक्ति को 'सा प्रेम स्वरूपा' भी कहा है। भक्ति यानी प्रेम और अखंड प्रेम, फिर भजन। तो, यहां भक्ति प्रेम का पर्याय है। तो, अखंड प्रेमधारा, अखंड भावधारा ये भक्ति है। तो भजन का काम भक्ति यानी प्रेम और प्रेम मानी परमात्मा।

आप ने पूछा है, 'भजन का अर्थ क्या करे? भजन यानी प्रार्थना?' प्रार्थना भक्ति है। और अखंड प्रेम से प्रार्थना करो तो भजन है। मैं एक बात का और खुलासा करना चाहूंगा कि कल जो बातें हुइ इसका मतलब ये नहीं कि आप भक्ति करना छोड़ दे, नाम-जप करना छोड़ दे, कथा सुनना छोड़ दे, आप गुरु पदपंकज सेवा छोड़ दे, आप जीवन की चित्त की सरलता छोड़ दे, ये बात नहीं है। यद्यपि आकाश में कोई मार्ग नहीं है फिर भी पक्षी भी आकाश में अपना एक मार्ग निश्चित करता है। हमारे यहां हवाई जहाज का भी एक हवाई मार्ग होता है। तो मेरे भाई-बहन, भक्ति ये मारग है। भजन कोई मारग नहीं है; भजन कोई पंथ नहीं है; भजन कोई संप्रदाय का नाम नहीं है; भजन कोई मज़हब का नाम नहीं है; भजन अद्वितीय है, निरूपमेय है। गंगासती गुजराती में कहती है-

जेने सदाये भजननो आहार...

भजन हमारा आहार है। दुनिया में तीन प्रकार का आहार होता है-सात्त्विक, राजसी, तामसी। फल-फूल, दूध आदि आप खाओ ये सात्त्विक आहार है। हमारे यहां ऐसा समझाया गया कि न्हाये बिना मुख में कुछ मत डालो। ये कोई रखे तो अच्छा है, मैं मना नहीं करता हूं लेकिन बलात् नहीं। यदि ये न हो तो हमारे शास्त्रकारों ने हमें छूट दी है कि स्नान- संध्या किये बिना आप इतनी वस्तु ले सकते हैं। शास्त्रकार हमारी तरह जड़ और कट्टर नहीं है। मैं आप को गिना दूं। आप को थोड़ी स्वतंत्रता मिल जाय। धर्म परम स्वातंत्र्य का नाम है, बंधन का नाम धर्म नहीं है। हर एक संप्रदाय मुक्ति की बात करते हैं और हम को नियमों मे जकड़ देते है! मोक्ष की बात करीब-करीब सब करते हैं और जिसको मोक्ष देने का आप वादा करते हो उनको भी तुम अपनी ज़ंज़ीरों से मुक्त तो नहीं होने देते! मेरी समझ में धर्म है परम स्वातंत्र्य का नाम। धर्म है विश्राम। कभी-कभी कुछ घटनाएं घटती है तो मैं सोचता हूं कि धर्मग्लानि कभी-कभी तथाकथित धर्मों के कारण हो रही है। अधर्म से धर्म की ग्लानि कभी नहीं हो सकती। अधर्म की कौन ताकत जो धर्म को ग्लानि दे पायें? अंधेरे की क्या ताकत कि जो सूरज को ललकार सके?

मुझे एक जिज्ञासु ने पूछा है, 'बापू, आज-कल कुछ धर्माचार्य अपने साथ सुरक्षा गार्ड रखते हैं। आप क्यों नहीं रखते?' पहला तो जवाब सीधा है, मैं धर्माचार्य नहीं हूं इसीलिए नहीं रखता हूं। मैं तो धर्म की सेवा करनेवाला सेवक हूं। धर्माचार्य हम कहां? तो सुरक्षा गार्ड ये सब अपनी-अपनी महापुरुषों की रीत होती है, हम इसमें क्यों जाय? मेरी सुरक्षा मैं हूं! मेरी सुरक्षा मेरे गुरु की कृपा है। मेरी सुरक्षा मेरा हनुमान है। और 'मानस' की पंक्ति सुनिए-

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।

मैं कहना चाहूंगा कि सुरक्षा पराधीनता का प्रतीक है। और धर्म परम स्वातंत्र्य का नाम है।

तो, मोक्ष की बातें कहनेवाले लोग हमें बांधे रखते हैं। और मेरा शास्त्रकार हमें छूट देता है कि तुम बिना न्हाये-धोये, बिना पूजा-पाठ किए इतनी वस्तु ले सकते हो। बिना न्हाये-धोये न लो तो अच्छी बात है, ये व्रत भंग मत करना स्वाभाविक हो गया है तो। गन्ने का ज्यूस, पानी पी सकते हैं आप। शास्त्रकार कहते हैं, दूध आप बिना पूजापाठ किये पी सकते हैं। फल खा सकते हैं। शास्त्रकार बहुत प्रेक्टिकल है; वो कहते हैं, औषधि बिना संध्या-पूजा आप ले सकते हो। तुम्हें दवाओं की समय पर जरूरत है तो आप कहे कि नहीं मैंने 'मानस'का पाठ नहीं किया है, मैं दवा नहीं लूंगा! तो ये ठीक नहीं है। तुम धार्मिक नहीं हो, अधार्मिक हो। धार्मिकता का लेबल नहीं होता है, एक लेवल होता है। धार्मिकता एक अवस्था का नाम है, एक पड़ाव का नाम है, एक स्थिति का नाम है।

एक प्रश्न है, 'मैं तो बापू, कलकत्ता कथा में नहीं आता लेकिन टी.वी. पर सुनकर आप को प्रश्न पूछता रहूंगा। लोगों को दु:ख का ही अनुभव क्यों होता है?' क्योंकि आदमी की मानसिकता दु:खी हो गई है। तुम सुखनिधान है। हम और तुम आनंद के रूप है। मैं तो बुद्ध के पक्ष से ही विनम्रता से थोड़ा दूर हटकर बोल रहा हूं कथा में आज; सत्य जो बुद्ध ने कहा, दु:ख है, दु:ख के कारण है, दु:ख का निवारण है। मैं कहता हूं कि सुख है,

सुख के कारण भी है, सुख की योजनाएं भी है। जब हम सापेक्ष उसको कुबूल करते हैं तो फिर बिलग कैसे कर सकते हैं? हम स्वयं सुखस्वरूप है। भगवान सुखस्वरूप है, तो उसके अंश होने के नाते हम भी सुखस्वरूप है। लेकिन दु:ख! दु:ख की एक आदत हो गई। थोड़ा कभी शांति से कभी अकेला आप पांच मिनट तो निकालो अपने लिए और सोचो, परमात्मा ने औकात से कई गुना ज्यादा नहीं दिया है?

'अमीर और फ़कीर का अंतर क्या? किसको फ़कीर कहोगे, किसको अमीर कहोगे?' मुझे सुनते हो तो व्याख्या भी मुझसे सुनो। कुबूल होने की जरूरत नहीं है, आप बिलकुल स्वतंत्र है। सभी प्रभाव की अभावता हो फिर भी तृप्त रहे उनका नाम फ़कीर। हरे कपड़ें पहने कि गेरुए पहने कि श्वेतांबर है कि पीतांबर है कि नीलाम्बर है। छोड़ो सब! ये लेबल है, लेवल नहीं है। तो, समस्त अभावों में भी तृप्त रहना फ़कीरों का स्वभाव है। और समस्त सुविधाओं में भी अतृप्त रहना अमीरों का स्वभाव है।

'आप किसीको करीब नहीं रखते, न किसीको करीब रखना चाहते हैं। इस बेदर्दी का क्या कारण है?' मैं नहीं, आप सब को भी सब से एक प्रामाणिक डिस्टन्स रखना चाहिए, जिसको असंग स्थिति कहते हैं। लिप्तता मार देगी, असंगता संवार देगी। गुजराती में एक गज़ल है-

समीप संताप छे झाझा, मजा छे दूर रहेवामां;

एक प्रामाणिक डिस्टन्स आवश्यक है साधना में। जिसको 'भगवद्गीता' ने असंग शस्त्र कहा है। और सत्संग करते-करते ये असंगता साधक में पनपती है ऐसा जगद्गुरु आदि शंकर का वाक्य है। आप बहुत चीपके हुए कपड़ें पहनो तो आप को बैठने में सहजता नहीं रहेगी। लेकिन चमड़ी वो तो चपोचप होती है लेकिन बैठने में कभी दर्द नहीं देती। असंगता आती है सत्संग में।

'कोई आप की आलोचना करता है तो आप को कैसा लगता है?' मुझे मेरी कोई प्रशंसा करे और अच्छा लगेगा तो आलोचना दु:ख पहुंचाएगी। और प्रशंसा मुझे सुख न देगी तो आलोचना मुझे दु:ख न देगी। मुझे नहीं, किसीको भी। ये कोई ऐसी स्थिति आई है ऐसी बात नहीं। हम सब को इसीलिए जाग्रत रहना चाहिए।

'देश का भविष्य आप को कैसा लगता है?' मुझे बहुत अच्छा लगता है। मैं बार-बार बरसों से बोल रहा हूं। ये भारत का भविष्य बहुत अच्छा है। ये पृथ्वी बड़ी प्यारी है। मैं फिर लाओत्सु का सूत्र याद करूं, 'ये विश्व पवित्र पात्र है, इससे महोब्बत करना।' लाओत्सु के तीन रत्न है। लाओत्सु ने कहा, एक तो प्रेम महारत्न है। दूसरा कहता है, अति से बचो। और तीसरा सूत्र लाओत्सु ने कहा, तुम्हारा सामर्थ्य का सदुपयोग करो।

'बापू, एक लोभी सतत धन का चिंतन करता है और एक कामी व्यक्ति निरंतर भोग की कामना करता है, तो ये क्या उसका भजन कहलाएगा?' यस, यस, यस! ये मेरा जवाब नहीं, तुलसीदासजी ने खुद जवाब दिया है 'रामचरित मानस' के समापन में-

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।।

लेकिन शब्द है 'निरंतर।' और किसी कामी को नारी 'निरंतर' प्रिय नहीं लगती। इसीलिए भोग है, भजन नहीं है। तुलसीदासजी शास्त्र के समापन में कामी को क्यों याद करते हैं? लोभी को क्यों याद करते हैं? 'उत्तरकांड' में तो ये सब गिर जाने चाहिए। और काम, क्रोध, लोभ इतने बुरे भी नहीं है ध्यान देना, प्लीज़। यद्यपि ये नरक के द्वार बताये हैं। नरक के पंथ 'मानस' में भी लिखे हैं।

सात वस्तु मैं आप के सामने रखूं इसकी तुलना में ये तीन इतने बुरे नहीं है। ये तीनों का अतिरेक अवश्य बुरा है। ये सम्यक् हो तो तीनों जरूरी है। तुलसीदासजी ने तो वात, पित्त, कफ कहा है। वात शरीर में जरूरी है, सम्यक् हो तो। वात प्रकोप हो जाय तो आयुर्वेद मना करता है। कफ जरूरी है, प्रकोप हो जाय तो मुश्किल है। पित्त जरूरी है लेकिन पित्तप्रकोप आदमी को रुग्ण बनाता है। तीनों जरूरी है। लेकिन मैं आप से सात चीज़ पूछता हूं। इर्षा जरूरी है? प्लीज़, टेल मी। जो बिनजरूरी है वो किये जा रहे हैं आदमी! एक-दूसरे की इर्षा! निंदा जरूरी है? द्वेष जरूरी है? जड़ता-मूढ़ता जरूरी है? अकारण अभिमान, अहंता जरूरी है? बदला लेना जरूरी है? और सातवां और अंतिम सूत्र, केवल, केवल, केवल अपने स्वार्थ का ही सोचना जरूरी है? छोड़ना है तो इन सात पर काम करो। काम, क्रोध, लोभ भूल जाओ। ये जरूरी है। अत्यंत हो तो वो बहुत खराब है। भगवान शंकर ने काम को जलाकर फिर काम की स्थापना की। क्योंकि उसको लगा कि जगत के संचालन के लिए ये तत्त्व जरूरी है।

सात कांड की कथा सुन रहे हैं, मैं बोल रहा हूं। हम सब ये सात से थोड़ा बचें। छोड़ो निंदा। एक-दूसरे की इर्षा छोड़ें। एक-दूसरे के प्रति द्वेष छोड़ें। जड़ता यानी मूढ़ता और अहंता छोड़ें। अहंकार करने जैसा कुछ नहीं है हमारे पास! बदला लेने की, प्रतिशोध की भावना भूलें। और अपनी केवल स्वार्थ की बातें छोड़ें। थोड़ा इससे उपर उठेंगे तो फायदा होगा। और क्या? तो उसके बाद जो स्थिति आई वो भजन हो जाएगी। तो, भजन एक ऐसा क्षेत्र है; कई संदर्भ में उसको देखना होगा। यद्यपि भजन बोलने का विषय है भी नहीं। हां, ये तो शब्दातीत अवस्था का नाम है; वर्णातीत अवस्था का ये नाम है। फिर भी बोलेंगे।

'बापू, पत्रिका 'सत्यान्वेषण', में रात्रि में बारह बजे के बाद एकसौ आठ 'हनुमान चालीसा' का पाठ करने से संतों का अनुभव का लाभ मिलता है ऐसा लिखा है।' मेरे नाम से तो नहीं है न इसमें कुछ? हां, हो सकता है कोई मेरे नाम से डाल दे! जो, हो। लेकिन पूछा है इसका जवाब मैं दे दूं कि एकसौ आठ 'हनुमान चालीसा' का पाठ, ये तो मैंने भी कई बार कहा है कि रात को बारह बजे शिवरात्रि की रात को करे, हो सके तो। लेकिन किसी कारणवश शिवरात्रि में न कर सके तो अमावास्या में बारह बजे के बाद करने से लाभ मिल सकता है। लाभ की बात ही भूल जाओ। तुम कर सको वो ही लाभ है। हर वस्तु में लाभ, लाभ, लाभ! शुभ का सोचो, लाभ को फेंको! दिन में भी बारह बजे कर सकते हैं। अमावास्या में भी कर सकते हैं। दूज को भी कर सकते हैं, तीज को भी कर सकते हैं! अरे, जब भी करो, करो। हां, कुछ अनुष्ठान के बारे में कुछ देश-काल समय निश्चित होता है ये बात और है। लेकिन हम जैसे संसारीओं को जब कुछ बातें कहता हूं तो शास्त्र के आधार पर बोल देता हूं। लेकिन मेरी कोई जड़ता नहीं है। जब भी करो। गुड़ जब भी खाओ, मीठा लगेगा। तो, 'हनुमान चालीसा', हरिनाम कभी भी लो, कोई बंधन नहीं है। भजन न सात्त्विक आहार है, न राजसी आहार है, न तामसी आहार है। भजन गुणातीत आहार है।

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ।।
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी ।
हृदयँ भगति मति सारँगपानी ।।

'अवधपुरी', पहला शब्द। दशरथ की व्याख्या। अयोध्या को हम पुरी कहते हैं। हमारे यहां सात पुरीओं का वर्णन है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका ये सब मोक्षदायिका मानी गई है। लेकिन जहां पांच चीज़ हो वहां रहो तो ये 'पुरी' है। एक उसको पुरी कहते हैं, जहां मन-वचन-कर्म से किसी का दिल न दुभाया जाय वो अवधपुरी है। मन-वचन-कर्म से किसी का दिल न दुभाया जाय ऐसा एक छोटा-सा घर भी 'पुरी' है; एक छोटा-सा आंगन 'पुरी' है। दूसरा लक्षण, जिस स्थान के बगल में कोई नदी बहती हो। जल की व्यवस्था हो पूरी मात्रा में, उसको पुरी कहा गया। द्वारिका में यद्यपि गोमती है।

अयोध्या में सरजू है। उज्जैन में क्षिप्रा है। हरद्वार-ऋषिकेश को पुरी कहे तो वहां गंगाजी है। मथुरापुरी कहो तो यमुनाजी है। जहां एक प्रवाही परंपरा निभती हो वो पुरी।

तीसरा, जिस नगर में कोई संत रहता हो वो 'पुरी।' कोई साधु रहता हो लेबलमुक्त। जहां कोई जागा हुआ फ़कीर बैठा हो ये पुरी है। चौथा है, जहां कोई राजा रहता हो। ध्यान देना, लोकशाही है। आजकल राजा रहा नहीं है। आजकल राष्ट्र का कोई नेता, कोई संचालक जो हो। क्योंकि कोई चाहिए जो हमारा रक्षक हो। जो हमारी आन-बान-शान को सुरक्षित रखे ऐसा कोई राष्ट्रनायक हो। राजा चाहिए उसको पुरी कहते हैं। सत्ता की बात नहीं है, लेकिन रक्षक चाहिए, जो प्रजा की छोटे-से छोटी व्यक्ति की रक्षा करता हो। और पांचवां और अंतिम सूत्र पुरी का है मेरे भाई-बहन, जहां कोई न कोई पहुंचा हुआ वैद्य रहता हो उसको पुरी कहते हैं। एक वैद्य चाहिए, एक डोक्टर चाहिए। जाग्रत पुरुष है तो वो शिक्षक हो गया। एक आचार्य है। एक वैद्य है। एक रक्षक है। एक प्रवाह है। 'सुजलाम्, सुफलाम्, सस्यश्यामलाम्' धरती है ये पुरी है। और अच्छे मानुष रहते हो। जहां कोई एक-दूसरे का द्वेष न करे, न कोई निंदा करे, न कोई इर्षा करे; उसको 'पुरी' कहते हैं।

'रघुकुल'; दशरथजी का परिचय देते हुए मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, 'रघुकुल' का महापुरुष है ये। हमारे यहां 'कुल' और 'वंश' की बड़ी महिमा रही। और 'मणि'; 'मणि' उपर की बस्तु है, शिखर की वस्तु है। आप अपने बारे में भी सोचे तो पता लगे कि कभी-कभी न चाहते हुए भी सज्जनों को दुर्जनों की सोबत करनी पड़ती है! नियति; मान लो नदी-नाव संजोग। सर्प के सिर पर 'मणि' रहता है। सर्प तमस का प्रतीक है, मणि प्रकाश का प्रतीक है। और साहब, देखा तो नहीं हमनें मणिधर सर्प को, हमने शास्त्रों में पढ़ा है। जिस जगह सांप के तलवे में विष रहता है, ये मणि बिलकुल विष के ही स्थान पर होता है। लेकिन मणि सांप का विष ग्रहण नहीं करता। उलटा किसी को वो मणिधर डंसे और विष व्याप्त हो जाय किसी की बोड़ी में और वो मणि लेकर उस पर रख दिया जाय तो मणि जहर चुस लेता है। सज्जन नियतिवश कुसंग में आ जाये तब उसको चाहिए कि उंचा स्थान देनेवाला भी विष लिए बैठे हैं। मणि के अपने

विशिष्ट गुण है। कितना भी तूफ़ान हो, हवा हो, मणि कभी बुझता नहीं है।

दशरथजी रघुकुल के मणि है। इसीलिए एक मणि उनके घर प्रगट हुआ है। रघुवंशमणि राम प्रगट हुए हैं। फिर खास एक शब्द पर मुझे जाना था वो यह शब्द है 'राउ'; राउ मिन्स राजा। तुलसीदासजी दशरथजी के लिए बहुत-से शब्दों का प्रयोग करते हैं। बहुत-से शब्दपुष्प से ब्रह्म के बाप का पूजन करते हैं तुलसीदासजी। तो, 'राउ' शब्द का अर्थ है राजा, मालिक, सम्राट। जिसमें ग्यारह लक्षण हो उसको राजा कहते हैं। नीतिकार चाणक्य ने ये मंत्र एक स्वजन आगेवान के लिए बनाया। और पाठभेद से राजा के भी राज्ञलक्षण ये दूसरा पाठ है। मेरे दशरथ में ये ब्रह्म का बाप है उसमें ग्यारह लक्षण पूर्ण है। राम में तो हो ही, सवाल ही नहीं। सुबह देख रखा था एक ग्रंथ, तो श्लोक मैं लेकर आया-

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता।
मित्रे अवंचकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगंभीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानता।
रूपे सुंदरता शिवे भजनिता राज्ञलक्षणम्।

ये राज्ञलक्षण है। ग्यारह लक्षण हो वो राउ है, ये राजा है। घर में किसी की भी बहन हो, भाई हो, कोई संत हो, कोई साधु हो, कोई आचार्य हो, कोई कारीगर हो, कोई मज़दूर हो लेकिन ये ग्यारह लक्षण यदि दिखाई दे तो समझना कोई राजा बैठा है; कोई कुलवान है; कोई मणि जैसा आदमी घर में आया है। सूत्र को केवल व्यक्ति के इर्द-गिर्द में संकीर्ण न बना दे, उसको विशाल पयमाने पर रखे।

पहला लक्षण, 'धर्मे तत्परता'; धर्मकार्य में जो तत्पर बने वो राजा। विश्वामित्र आये महिपति रघुकुलमणि दशरथ के घर और आते ही कहा कि महाराज, मैं मांगने आया हूं। तो 'धर्मे तत्परता' तो देखिए? धर्म में तत्पर रहना ये राजापना है। 'मुखे मधुरता'; जिसके मुख में मधुरता हो। सत्य हो लेकिन मधुर हो। जो मुखे मधुरता रखेगा उसके घर हंस आएगा, कोई साधु आएगा। 'दाने समुत्साहिता'; दान करते समय उत्साह हो। मैं पहले दे दूं, मैं पहले दे दूं! एक औदार्य हो। किसी को मदद करनी हो तो लगे कि मैं पहले कर दूं। ये राजा का लक्षण है। और मित्र के साथ निश्च्छल प्रेम। मित्र के साथ छलवाला प्रेम नहीं चाहिए। कपटमुक्त प्यार ये राजा का लक्षण है। 'गुरौ विनयिता'; सद्गुरु के सामने जिसका विनय होता हो। सम्राट हो तो भी क्या? पूरे रघुकुल की गुरु विनयता तो देखो साहब!

गुरु बसिष्ठ कुल पूज्य हमारे ।

वहां तक माना गया कुलगुरु को कि हमारे गुरु विधाता के लिखे लेख को भी बदल सकते हैं; इतना भरोसा गुरु के बोल पर गुरु के संकेत पर रहा। 'चित्तेऽतिगंभीरता'; राजा वो है जिसके चित्त में गांभीर्य है। राजनीति में लिखा है, राजा के चित्त को कोई जान न पाये ऐसा उसका गंभीर चित्त होना चाहिए। सच्चा राष्ट्रनायक वो है; पता न लगे कि उसके मन में क्या हो रहा है। समय पर किसी भी मुद्दे का गंभीरता से चिंतन करता हो। अतीत के अनुभव हो और भविष्य का विज़न हो। चैतसिक गांभीर्य राजा का लक्षण माना है।

'आचारे शुचिता'; व्यवहार में पवित्रता हो ये राजा का लक्षण है। व्यक्ति और राष्ट्र बाहर से स्वच्छ हो, भीतर से पवित्र हो। एक समय था, राजाओं की लोग मनौती करते थे। इतना पवित्र आचरण राजाओं का था। ये चमत्कार नहीं है। ऐसा न हो तो आश्चर्य। 'गुणे रसिकता'; राजा की व्याख्या ये है। शास्त्र कहता है कि जहां कोई भी अद्भुत विद्या हो उसमें रस ले वो राजा का गुण माना गया। सभी विद्या को जो आदर दे। 'शास्त्रेऽतिविज्ञानता'; राजा शास्त्र का जाणकार होना चाहिए। और 'रूपे सुंदरता'; देखो, भारत सुंदरता का दुश्मन नहीं है। हां, जो लोग रूप की आलोचना करते हैं

वो खुद विकृत है इसलिए आलोचना करते हैं! रूप एक निधि है। और ग्यारहवां लक्षण बहुत आवश्यक है, 'शिवे भजनिता'; शिव को भजता हो। तो, राजा का ग्यारहवां लक्षण है बाप, शिव का भजन करता हो। अब, संप्रदायों की संकीर्णता तो अपनी जगह है। लेकिन आप के इष्टदेव कोई भी हो, क्या फ़र्क? लेकिन मौका मिले तो महादेव को भूलियो मत। महादेव अपनी कंठी नहीं बांधेगा, तुम्हारे इष्टदेव की ओर आप को पुश करेगा; भक्ति में तीव्रता देगा।

वेदविदित महाराज है; धर्मधुरंधर है। धर्मधुरंधर किसको कहते हैं? धर्मधुरंधर शास्त्र किसको कहते हैं? साधुहृदय की प्रवृत्ति किसको कहते हैं और गुणनिधि किसको कहते हैं? ज्ञानी किसको कहते हैं? और 'हृदय भगति मति सारंगपानी' किसको कहते हैं? 'हृदय भगति' दशरथजी के दिल में भक्ति है। दिल में ईश्वर नहीं है। 'गीता' कहती है, 'ईश्वरः सर्व भूतानां।' ईश्वर रहना चाहिए। दसरथजी के दिल में ईश्वर नहीं है। कौन है? भक्ति है। हृदय में भक्ति रहती है और 'मति सारंगपानी।' एक दूसरा कमरा, बुद्धि में सारंगपानी ठाकुर को रखा। भगवान का स्थान हृदय है, बुद्धि नहीं है; वो बुद्धि से पर है। बुद्धि में ईश्वर निवास करे? ऐसा तो आता नहीं है। ईश्वर बुद्धि का विषय माना नहीं गया है। जरूरी है आज कि बुद्धि में भगवान का वास हो; अक्ल में ईश्वर हो ताकि अक्ल प्रपंच कम करे; अक्ल होशियारी कम करें; अक्ल दाव-पेच कम करें। अक्ल तर्कातीत को अपने अंदर बिठाये ताकि तर्क की जाल कम बूने। इसीलिए तुलसी एक नया ठिकाना ईश्वर का स्थापित करता है।

कल कथा के क्रम में श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की गई। उसके बाद सीतारामजी की वंदना है। उसके बाद नव दोहे में स्वतंत्ररूपेण भगवान के नाम की महिमा और नाम की वंदना की गई है। त्रेतायुग में जो स्वयं रामभद्र ने आकर किया वो कलियुग में उसका नाम कर देता है। कलियुग में नाम की महिमा बहुत है। सभी संतों ने इस पर बल दिया है। कोई भी नाम लो। नाम चित्तशोधक है। तुलसीजी लिखते हैं, रामनाम की महिमा कहां लग बखानुं, क्योंकि स्वयं राम को रामनाम पर बोलने को कहा जाये तो राम भी अपने नाम की महिमा पर नहीं बोल पाते इतना नाममहिमा का विशाल प्रदेश है। भरोसे से जो नाम लेगा उसको जीवन में ओर कुछ करने की जरूरत नहीं है। सवाल है संतत हो, संतत भरोसा हो, संतत भावधारा हो। तो-

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

सब प्रतिबंध हटा दिये गये, ऐसे नाम की महिमा तुलसीदासजी ने बहुत मात्रा में गाई है।

धर्म परम स्वातंत्र्य का नाम है, बंधन का नाम धर्म नहीं है। हर एक संप्रदाय मुक्ति की बात करते हैं और हम को नियमों मे जकड़ देते है! मोक्ष की बात करीब-करीब सब करते हैं और जिसको मोक्ष देने का आप वादा करते हो उनको भी तुम अपनी ज़ंज़ीरों से मुक्त तो नहीं होने देते! मेरी समझ में धर्म है परम स्वातंत्र्य का नाम। धर्म है विश्राम। कभी-कभी कुछ घटनाएं घटती है तो मैं सोचता हूं कि धर्मग्लानि कभी-कभी तथाकथित धर्मों के कारण हो रही है। अधर्म से धर्म की ग्लानि कभी नहीं हो सकती। अधर्म की कौन ताकत जो धर्म को ग्लानि दे पाये? अंधेरे की क्या ताकत कि जो सूरज को ललकार सके?

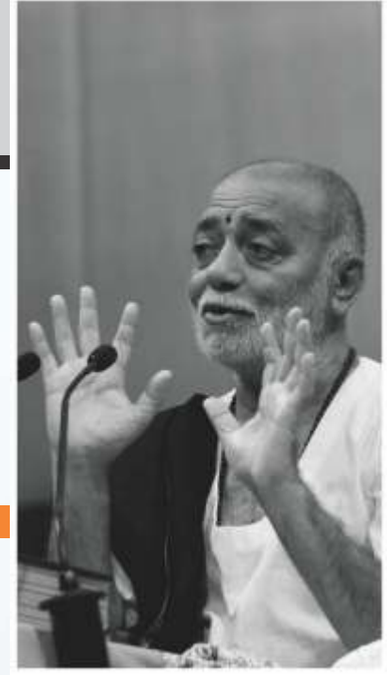

धर्म फूलमाला नहीं है, धूंसरी है

'मानस-दसरथ', 'रामचरित मानस' अंतर्गत महाराजा दशरथजी के चरित्र को हम और आप संवाद के रूप में दर्शन करने की चेष्टा कर रहे हैं। दो पंक्तिओं में महाराज का जो दर्शन प्रस्तुत किया है तुलसी ने उसको प्रसन्न चित्त और प्रशांत चित्त से श्रवण करे। कल कुछ 'अवधपुरी' की चर्चा की। 'रघुकुल', 'मणि' और 'राजा' की परिभाषा कुछ अन्योन्य ग्रंथों से, संतों से, जो कुछ महसूस हुआ, सो भी व्यक्त किया गया। दूसरी पंक्ति पर ओर ध्यान दें।

धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी ।

दशरथजी है धर्मधुरंधर, दशरथजी है गुण का खजाना-कोष, दशरथजी है ज्ञानी। महाराज दशरथ के हृदय में भक्ति है और बुद्धि में सारंगपाणि है यानी परमात्मा है। कल की कथा के संदर्भ में जिज्ञासाएं भी है। यथावकाश मैं कोशिश करूंगा। पहली बात तो ये कि धर्मधुरंधर किसको कहें? यद्यपि 'राज्ञलक्षण' में कल ग्यारह सूत्रों की चर्चा हुई। लेकिन धर्मधुरंधर का मतलब है, 'धुरी' का मतलब है 'धूंसरी।' धर्मरूपी 'धुर' को धारण करे, वो 'धर्मधुरंधर' है। नई पीढ़ी ने तो धूंसरी देखी होगी कि नहीं, खबर नहीं! लकड़ी की धुरी होती है और उसका एक आकार होता है। मुझे बंगाल का अनुभव नहीं है लेकिन खास करके जिस प्रांत से हम आते हैं गुजरात, इनमें भी खास करके सौराष्ट्र, वहां एक विशेष आकार होता है मतलब धर्म का एक विशेष आकार होता है।

मेरे भाई-बहन, पहली बात तो ये मैं और आप समझ लें कि धर्म फूलमाला नहीं है, धूंसरी है। हम लोगों ने धर्म को केवल फूलमाला समझ लिया है। 'ये धर्माचार्य है, माला पहना दो! ये मोरारिबापू है, माला पहना दो! ये कथाकार है, माला पहना दो! ये धार्मिक जगत की कोई विशिष्ट व्यक्ति है, माला पहना दो!' तत्त्वतः धर्म फूलमाला होता तो ये कहा जाता कि 'धर्मसुमनधर', 'धर्मपुष्पधर', ये शब्द आता। यहां तो 'धूंसर' है। धर्मरूपी माला कांध की शोभा है, कंठ की नहीं। मतलब ये भी हो सकता है कि धर्म प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। धर्म घिस देता है। धूंसरी जिस बैल के कांध उपर होती है इस बैल को कभी देखना, उसकी कांध स्मूध नहीं होती है, खड़बचड़ी होती है। इसीलिए एक अर्थ में धर्म के मार्ग को कठिन बताया है। अच्छी बात है, धार्मिक लोगों को हम फूलमाला पहनाये इसका कोई वो नहीं है; ये तो हमारा शील है। लेकिन पहननेवाला ये न समझ ले कि मैं धर्मधुरंधर हो गया। धर्मधुरंधर तब कहलायेगा

जब 'धूंसरी' तेरे कांध पर निशान लगा दे। ये सपाट भूमि का नाम धर्म नहीं है!

तो, धर्म धूंसरी है, फूलमाला नहीं है। फूल एक बार पौंधे से चूंट लिया फिर उसका कोई परिणाम नहीं है। माला किसीको पहनाई, वो निकालकर किसीको दे देगा! पौधे से फूल बिलग होता है तो उसके बाद खुश्बू की मात्रा भी कम हो जाती है। एक बार उसकी मूल धारा से उसको हटाया फिर खुश्बू की मात्रा कम हो जाती है, मुरझाना शुरू हो जाता है, गिर जाता है; कुचल दिया जाता है। धर्म को फूलमाला समझ लिया जाय तो धर्म की दशा भी यही हो सकती है।

ग्यारहवीं सदी में एक सूफी संत हुआ, बहुत पुराना सूफी महापुरुष फ़रीरुद्दीन अत्तार। सूफी परंपरा का एक जगमगाता हुआ सितारा। और मुझे बहुत अच्छा लगता है कि इस फ़कीर ने भी धर्म की परिभाषा करते हुए कहा है, 'सत, महोब्बत, कृपालुता।' सभी सयाने एक मत। अत्तार साहब कहते हैं, 'मैं आल्फाबेट नहीं सीखा, मैं ईश्क की किताब में केवल नामे-सनम सीखा। अत्तार का छोटा-सा एक वाक्यब्रह्म है, 'नामे-सनम सीखा।' मुझे गुजराती के एक बड़े साहित्यकार भगवतीकुमार शर्मा का स्मरण होता है-

हरि, मने अढी अक्षर शिखवाडो!
एंसीने आरे आव्यो छुं;
मारो अगर जिवाडो!
हरि, मने अढी अक्षर शिखवाडो...

अस्सी साल के कगार पर आ गया हूं। 'ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होई।' अत्तार कहता है, 'इश्क की किताब से हम केवल नामे-सनम सीखे हैं।' ए मेरे श्रावक भाई-बहन! नामे-सनम सीखो। भूलो सब। कहो हरि को, 'मने अढी अक्षर शिखवाडो।' और रूमी श्रद्धांजली देते हुए लिखता है कि हम तो धर्म की एक ही नगरी में बामुश्किल प्रवेश कर सके हैं और अत्तारसाहब धर्म की सात-सात नगरी में घूम गये! यहां इश्क मानी सबसे बड़ा धर्म। गुजराती शायर कैलास पंडित ने लिखा है-

लो हवे कैलास खुदने कांध पर,
राह सौनी क्यां सुधी जोया करो!

खुद को खुद के कांध पर लेने का नाम है ईश्क। कोई नहीं आयेगा।

दर्दने गाया विना रोया करो।
प्रेममां जे थाय ते जोया करो।

ये धर्म है। फ़नागीरी है! दफ़नागीरी है! फ़ाकागीरी है! दुनिया तो धर्म के नाम पर फ़कीरों के कांध छोल देते हैं, बाद में फूलमाला पहनाते हैं! फिर मज़ारों पर चराग जलाते हैं सब!

'धर्मधुरंधर' शब्द ज्यादातर दो के लिए यूझ किया गया। एक तो राजाओं के लिए; दूसरे धर्माचार्यों के लिए। 'रामचरित मानस' में 'धर्मधुरंधर' शब्द दशरथ के लिए प्रयुक्त हुआ; 'धर्मधुरंधर' शब्द मनु महाराज के लिए प्रयुक्त किया गया; प्रतापभानु के बाप के लिए प्रयुक्त किया गया है। ये थे धर्मधुरंधर; धर्म की धूंसरी कांध पर लिये चलते थे। गुरु का धर्म क्या? गुरु का धर्म है आश्रित के समस्त कर्मों का बोज अपने कांधे पर ले लेना। शिष्य का धर्म क्या? आश्रित का धर्म इतना ही है, सब धर्म योगेश्वर के चरणों में छोड़ देना। 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामैकं शरणं व्रज।' चाणक्य कहता है, सत्यरूपी धर्म मेरी माँ है। ज्ञान मेरा पिता है। क्षमा मेरा बेटा है। शांति मेरी पत्नी है। दया मेरी भगिनी है।

तो, धर्मधुरंधरता कोई साधारण बात नहीं है। इसीलिए महाराज दशरथजी के लिए गोस्वामीजी ने ये शब्द प्रयोग किया। और दशरथजी के लिए एक बार ओर 'धर्मधुरंधर' शब्द कहते हुए गोस्वामीजी कहते हैं-

धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ।

कैकेयीभवन में बेहोश स्थिति में थे। कैकेयी ने वरदान मांग लिया और परिस्थिति विपरीत हो चुकी थी और उसी समय जब थोड़ा बाहर आये तो तुलसीदासजी बोले 'धरम धुरंधर।' तो मुझे व्याख्या मिलती है यहां कि

धर्मधुरंधर उसको कहे कि विषम से विषम परिस्थिति में जो धैर्य धारण करे, ये धर्मधुरंधर। बोल जाना बहुत अच्छा है, स्वाभाविक लगता है लेकिन जब विषम परिस्थिति आती है तब बड़ों-बड़ों धैर्य गंवा देते हैं। 'शिवसूत्र' में लिखा है, 'धैर्यकंथा।' साधु, धीरज ही तेरी गुदड़ी है; धैर्य ही तेरी कंथा है।

तो मेरे भाई-बहन, जो धैर्य धारण करे वो धर्मधुरंधर। उसने धर्म की धुरी धारण की। बात-बात में अधीर न हो जाय; लाख धर्म की चर्चा करे और अपने सिद्धांत को कोई काटे तब 'स्थितप्रज्ञता' अकबंध रहे वो धर्मधुरंधर है। धर्म का कभी विवाद नहीं होना चाहिए, धर्मसंवाद होना चाहिए। लेकिन धर्म के बारे में धैर्य हम गंवाते जा रहे हैं इसीलिए धर्मधुरंधरता केवल कुछ समय के बाद मुरझानेवाली फूलमाला बन गई, खुश्बू गंवानेवाली फूलमाला हो चुकी!

बिस्व बिदित एक कैकय देसू।
सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू।।
धरम धुरंधर नीति निधाना।
तेज प्रताप सील बलवाना।।

सत्यकेतु सम्राट जो प्रतापभानु का पिता, उसके लिए भी 'धर्मधुरंधर' शब्द का प्रयोग 'मानस' में आया। और वहां यदि 'धर्मधुरंधर' शब्द के पीछे जो शब्द अनुगमन कर रहे हैं वो एक अर्थ में हम 'धर्मधुरंधर' की व्याख्या में ले सकते हैं-

धरम धुरंधर नीति निधाना।

कौन धर्मधुरंधर? जो धीरज का निधान हो; कौन धर्मधुरंधर? जो नीति का निधान हो। यहां नीति केवल वो शब्द लेकर मैं व्याख्या करना नहीं चाहता जो नीतिशतकों में, नीतिग्रंथों में वर्णन किया गया है। ये नीति तो एक व्यवहारु नीति है। जीवन जीने के लिए बहुत उपयोगी भी है। यहां 'नीति' शब्द बड़ा आध्यात्मिकता लिए हुए है। कभी-कभी हम मन के अनुकूल नीति निर्धारित करते हैं, आत्मा के अनुकूल नहीं। दिमाग के कहने पर नीति निर्धारित करते हैं, दिल के कहने पर नहीं। आत्मा के अनुकूल प्रवृत्ति नीति है; आत्मा के प्रतिकूल प्रवृत्ति अनीति है। आप कहेंगे कि मन और दिमाग कुछ कहता है तो समझ में आता है और उसके कहने पर हम करने लगते हैं। बात सही है। लेकिन एक बहुत भीतर से आवाज़ भी आती है जिसको सुनने के लिए हम थोड़ा ठहरते नहीं है। अध्यात्मजगत की नीति की व्याख्या है, आत्मा के अनुकूल प्रवृत्ति का आचरण। सत्यकेतु है धर्मधुरंधर। प्रतापभानु के पिता है नीतिनिधान और ये नीति का अर्थ है हमारी बनाई नीति नहीं, आत्मा कहे सो नीति। तो, सत्यकेतु है नीतिनिधान। कौन धर्मधुरंधर? जिसमें तेज हो। अनीति ओजस छिन लेती है। विचारक के पास दिमाग की नीति होती है, फ़कीरों के पास आत्मा की पुकार की नीति हुआ करती है। धर्म की एक आभा होती है। श्रम ओजस्विता लाता है। श्रम तपस्या का नाम है। इसीलिए फिर युवान भाई-बहन, मैं कहूं, कबीर साहब कहते हैं-

कह कबीर कछु उद्यम कीजै।

उद्यम करो, उद्यम करो, उद्यम करो। और शिवसूत्र में लिखा है,'ऊद्यमोभैरवः।' बाप! ऊद्यम भैरव है, आत्मा शिव है। और जिस बोड़ी में आत्मा है ये देहधारी शरीर जिसको मिला है उसको उद्यमरूपी भैरव की उपासना करनी चाहिए। वो तंत्र-मंत्रवाली नहीं! उद्यम करो, पुरुषार्थ करो। आलसी आदमी में तेज नहीं बढ़ता, मेद बढ़ जाता है। धर्मधुरंधरता का एक अपना प्रताप होता है, एक अपना प्रभाव होता है। धुरंधर वो है गोस्वामीजी कहते हैं, जिसमें शील है। यहां तो शील और बल दोनों का समन्वय किया है, जैसे हनुमानजी में है। हनुमानजी बलवान भी है, शीलवान भी है। लेकिन यदि किसीमें बल कम हो, शारीरिक बल कम हो तो चिंता नहीं, लेकिन शील बहुत बड़ा बल है। धर्मधुरंधर वो है जिसमें शील का बल है और शारीरिक आत्मबल भी है, देह का बल है।

एक बार गोस्वामीजी 'धर्मधुरंधर' का प्रयोग स्वयंभू मनु महाराज के लिए भी करते हैं-

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा ।
जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ।।
दंपति धरम आचरन नीका ।
अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ।।

तो, मनु और शतरूपा का जो आदि दंपती माना गया हमारी परंपरा में। कहीं आदम-इव की चर्चा है; तो हमारे सनातन धर्म में मनु-शतरूपा की परंपरा है। वहां से नरसृष्टि का आरंभ हुआ है, ऐसा शास्त्र कहता है। बड़े प्रतापी महापुरुष मनु और शतरूपा। और प्रतापी माँ-बाप के घर संतान भी बड़ी प्यारी होती है। अपवाद कोई होता है, छोड़ो! उत्तानपाद और प्रियव्रत नाम के दो बेटे हुए हैं। देवहुति नाम की कन्या हुई मनु के घर और जिसका कर्दम ऋषि से ब्याह हुआ। ये देवहुति और कर्दम के संसार से भगवान कपिल का जन्म हुआ जो अवतारों की गणना में एक अवतार माना गया। सांख्य के प्रधान महापुरुष जिन्होंने 'सांख्यशास्त्र' जगत को दिया। मनु महाराज बार-बार अपने संतानों को कहते हैं कि अब राज्य ले लो; मैं अब वन में जाकर हरि भजूं। और संतान मना करते हैं, नहीं; नहीं; अभी नहीं, अभी नहीं। लेकिन उम्र जैसे-जैसे पकी तब हरि के लिए वन में गमन किया। और आज कोई संतानों को सोंपकर वन में जाने की जरूरत नहीं; भवन में ही रहो लेकिन भवन में अपनी मानसिकता से एक वन पैदा करो। परमात्मा की प्राप्ति के लिए मनु-शतरूपा निकल पड़े हैं। मानो ज्ञान और भक्ति देह धारण करके जा रहे हैं! जैसे नैमिषारण्य में दोनों आये, सुना तो नैमिषवासी तपोवन में रहनेवाले सिद्ध मुनि और ज्ञानी लोग, महात्मा लोग मिलने के लिए दौड़ आये। ये राजा मनु को नहीं मिलने आये थे, ये राणी शतरूपा को मिलने नहीं आये थे। ये ज्ञान-भक्ति को मिलने आये थे।

आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी ।
धरम धुरंधर नृपरिषि जानी ।।

क्यों आये महात्मा लोग मिलने? उसने जान लिया कि ये धर्मधुरंधर राजर्षि आया है। नृपरिषि मानी राजर्षि आया है। हमारे यहां ऋषि होते हैं। महर्षि होते हैं। देवर्षि होते हैं। ब्रह्मर्षि होते हैं। राजर्षि होते हैं। एक तो ऋषि है, जो मंत्रदृष्टा होता है; शास्त्र लिखता है। दूसरा महर्षि है, जो ऋषि द्वारा लिखे मंत्र का अर्थ प्रदान करता है; उसको महर्षि कहते हैं। तीसरा है राजर्षि; ऐसे धर्मधुरंधर लोग, जो बन में जाकर तपस्या करते हैं, उसको राजर्षि कहते हैं। एक होते हैं देवर्षि, जो परमात्मा की विभूति मानी जाती है। 'गीता'कार योगेश्वर ने कहा, नारद मेरी विभूति है। एक होता है वशिष्ठ जैसे ब्रह्मर्षि। ब्रह्मर्षि का अर्थ सीधा-सादा जो विधि-लेख को बदल दे। ब्रह्मा ने जो लिखा वो ब्रह्मर्षि बदल देता है। यद्यपि बसिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र है। ब्रह्मा के लेख को ब्रह्मा का बेटा ब्रह्मर्षि मिटा सकता है। एक ऋषि छठ्ठा मेरी व्यासपीठ ने खड़ा किया है, वो है 'प्रेमर्षि।' और वो सब से उपर है 'प्रेमर्षि'; प्रेम का देवता, प्रेम का ऋषि। विश्व को प्रेमर्षि की जरूरत है। ब्रह्मर्षि मिल जाय तो अच्छी बात है, लेकिन मैं तो प्रारब्ध मिट जाय इस पक्षवाला भी आदमी नहीं हूं। प्रारब्ध है तो भोग ले यार! गुरु को क्यों कष्ट दें कि मेरा प्रारब्ध मिटा दे। भोग लो! हम प्रेमर्षि पैदा करे। जगत में प्रेम की स्थापना हो, सत्य की स्थापना हो, करुणा की स्थापना हो। सिद्ध, ज्ञानी, मुनिलोग महाराज मनु को मिलने आये क्योंकि वो धर्मधुरंधर थे। तो, महाराज दशरथजी का दर्शन हम कर रहे हैं 'मानस' की दृष्टि से; तो वहां उसको 'धर्मधुरंधर' कहा है। और फिर दूसरा आगे का शब्दब्रह्म है 'गुननिधि।'

अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता ।
अस बर दिन्ह जानकी माता ।।

निधि नव है। ठीक है? 'रामायण' की 'निधि' कुछ बिलग है। वैसे 'नव'ही नहीं, 'मानस' में खोज करो तो आप को बहुत-सी निधि मिलेगी। कुछ गिना दूं आप को।

एक निधि तो 'गुणनिधि।' परमात्मा की कृपा से, माँ-बाप के संस्कार से, अच्छी पावनी परंपरा से, हमारे संतानों में अच्छे गुण आ जाय तो समझना ये एक निधि है। दूसरी निधि होती है, अपने परिवार में परमात्मा अपने संतान को, परिवार के सदस्यों को एक विशिष्ट रूप दे, तो रूप भी निधि है। रूप निधि है, उसकी आलोचना न करो। शिकार हो तो बात गलत है, बाकी रूप निधि है। ठाकोरजी 'रूपनिधि' है। श्री हनुमानजी 'गुणनिधि' है। रूप को निधि समझो। और साहब, थोड़ी सांसारिक बात लगेगी लेकिन उसका राज़ समझोगे तो आध्यात्मिक सूत्र है। उपर-उपर से मत देखना। 'निधि' उसको कहते हैं जो लोग छिपाते हैं। खजाना कोई दिखाते हैं? सब कहेंगे, दाल-रोटी निकालते हैं! हद है! रूप का प्रदर्शन नहीं हो सकता। रूप हमारी निधि है। श्याम हो, गौर हो।

श्याम गौर सुंदर दोउ भाई ।
बिस्वामित्र महानिधि पाई ।।

कोई गुरु को अच्छा शिष्य मिल जाय तो गुरु की निधि है। अच्छा शिष्य मिलना चाहिए। एक बात खानगी में बता दूं। किसीको कहना मत! गुरु है, है, है। शिष्यनो दुकाळ पड्यो छे! जिसको शिष्यत्व कहते हैं, ऐसा शिष्यत्व खोजना पड़ता है। क्योंकि हम सब बुद्धपुरुषों के पास अपने हेतुओं की गठरी लेकर जाते हैं!

तो 'गुणनिधि' एक निधि। 'रूपनिधि' दूसरी निधि। मैं बिलकुल धरा की बातें करता हूं। ये निधि मानी अरबों, खरबोंवाली नहीं। तुम्हारे परिवार में कोई एक जीव प्रकाशवान हो, तेजस्वी हो, पढ़ने में, वर्तन में लगे कि नहीं, नहीं, ये कुल तार देगा, तो ये निधि है। उसको 'रामायण' 'प्रकाशनिधि' कहता है। आप और हमारे पास यदि योग है, योग की कुछ विद्या है तो योग हमारी निधि है। ज्ञान है तो समझो ज्ञान हमारी निधि है। और ज्ञान तो होता है लेकिन ज्ञान के साथ-साथ बैराग हो तो वो निधि है।

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।

रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ।।
प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम ।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ।।

जोग-ज्ञान-बैराग्य ये सब निधि है। शील निधि है। तुम्हारे दिल में करुणा हो तो करुणा हमारी निधि है।

करुनानिधि मन दीख बिचारी ।
उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ।।

करुणा हमारी निधि है। 'स्नेह' हमारी निधि है। फिर मेरे सूत्र पर मैं घूम-घूमकर आउं सत्य हमारी निधि है। 'दयानिधि।' यदि इस तरह 'रामायण' का पारायण किया जाय, खोज की जाय तो निधि ही निधि है। तो, ये नव निधि नहीं, असंख्य निधि है आध्यात्मजगत की।

महाराज दशरथजी का आगे का दर्शन है, वो 'ज्ञानी' है। 'मानस' में आप देखेंगे तो कई ज्ञानी मिलेंगे। एक तो पूरा नगर ज्ञानी है। 'जनकपुरी' पूरी ज्ञानीओं की नगरी है, सब ज्ञानी। महाराज विश्वामित्रजी ज्ञानी है। महाराज जनक ज्ञानी है। दशरथजी ज्ञानी है। गरुड ज्ञानी है। मेरा भुसुंडि ज्ञानी है। एक कौआ ज्ञानी है! ज्ञान किसी कोम की बपौती नहीं है, ये गुरुदत्त संपदा है।

गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिटै न भेद।

शायद गुरु के बिना शास्त्र मिल जाय, लेकिन भेद न उकले। जब रामजी ने रावण विनाश के बाद हनुमानजी को कहा कि जानकीजी को ख़बर दे कि असुर का काम समाप्त हो गया है। और हनुमानजी गये अशोकवाटिका में। और हनुमानजी क्या शील का आदर्श है! दूर से माँ जानकी को प्रणाम किया है, एक मर्यादा है। और जानकीजी पूछती है, सब ठीक हो गया? बोले, हां माँ, रावणकुल का नाश हुआ।

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।

हनुमान ने कहा कि माँ, रावण मर गया। 'मन हरष', मन हर्ष से भर गया। 'तन पुलक', माँ के शरीर में पुलकावलि हो गई। 'लोचन सजल', माँ की आंखे डबडबा गई। 'कह पुनि पुनि रमा', 'का देउँ', हे हनुमान, बोल! तूझे मैं क्या दूं? त्रिलोक में ऐसा समाचार जो आज तूने मुझे दिया। हनुमानजी ने कहा -

सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।

हनुमानजी ने कहा, माँ, मैंने आज क्या नहीं पाया? 'मातु मैं पायो अखिल जग।' अखिल जगत का राजा बन गया। 'राजु आजु न संसयं।' यहां गुरु मुख काम में आता है। भाषांतर ये है कि 'हे माँ, आज मुझे क्या नहीं मिला है? अखिल जग का राज मुझे मिल गया।' मेरी व्यासपीठ को गुरुमुख कोई पूछे तो मैं कहूं, क्या हनुमानजी राज के भूखे थे तो कह दिया मुझे जग का राज मिल गया? केवल शिष्टाचार में बोले हैं? मेरा हनुमान ऐसा सुष्ठु-सुष्ठु नहीं बोलता। यहां 'राजु', 'आजु' और 'संसयं' तीन शब्द पर आध्यात्मिक दृष्टि से कहूं। माँ, आज तक मुझे राम का ज्ञान था। लेकिन राज़ नहीं पाया था कि राम कौन है? आज राज़ खुल गया और अब 'न संसयं।' अब मेरे मन में संशय कतई पैदा नहीं होगा। गुरु की कृपा से शास्त्र के रहस्य खुलते हैं। 'राज़' खुल गया, 'न संसयं।' और ये भी ध्यान देना कि संशय तो जाता है लेकिन संदेह नहीं जाता। मुश्किल मामला ये है। कोई आप को मिले और आप को जवाब दे दे तो संशय मिट जाएगा। अरे, किसीको देखते भी संशय चला जाता है। लेकिन संदेह के लिए तो कथा में बैठना पड़ेगा। नव दिन आसन लगाना पड़ेगा। प्रमाण 'मानस' का 'उत्तरकांड'-

देखि परम पावन तव आश्रम ।
गयउ मोह संसय नाना भ्रम ।।

गरुड कहते हैं, भुशुंडिबाबा, आप का आश्रम का दर्शन करके मेरा संशय तो खतम हो गया लेकिन कथा न सुनी तब तक संदेह नहीं गया। और गरुड को डकार आया और कहने लगे-

गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित ।

देखने से संशय जाता है, सुनने से संदेह जाता है। सत्संग करना पड़ेगा। हनुमानजी कहते हैं, 'हे माँ, आज मैंने राज़ पा लिया।' 'हे पुत्र हनुमान, तेरे हृदय में तमाम सद्गुण निवास करे।' हनुमानजी के चेहरे पर कोई प्रसन्नता नहीं आई! इश्वर तो मुठ्ठी में है, किसके पास नहीं है? यात्रा जहां से शुरू करते हैं इससे पहले ओलरेडी वो मिला हुआ होता है। लेकिन पहचान करानेवाला कोई हो इसीका नाम इस दिव्य भारत ने गुरु कहा है। हनुमानजी ने कहा, 'माँ, अभी संतोष नहीं हुआ है।' बोले, 'मैंने सकल सद्गुण का निधान बना दिया, अब क्या है?' तो माँ समझ गई कि बेटे की भूख क्या है? तो कहा, 'लक्ष्मण सहित राम तुझ पर बहुत अनुकूल रहेंगे, अनुग्रह करेंगे, तुझ पर प्रेम करेंगे।' 'बस, माँ, अब ठीक है। बाकी गुणों को क्या करे?' शास्त्र तो मिल जाता है। राज़ कौन खोले? कोई राज़ खोले, ठीक बता दे वर्ना मुश्किल है, कैसे समझे? लेकिन परिपूर्ण मात्रा में रहस्य गुरुकृपा से प्राप्त होता है।

तो, मैंने कल बोलकर छोड़ दिया था कि हमारे यहां 'भगवद्गीता' कहती है कि इश्वर हृदय में निवास करता है। यहां तुलसी कहते हैं कि दशरथ के दिल में इश्वर नहीं, भक्ति है। अंदर भगवान हो तो भी हम भटकते हैं! इसीलिए तुलसी कहते हैं, दशरथ के दिल में भगवान नहीं, भक्ति है; हृदय में प्रेम हो। परमात्मा हो ये तो है ही चलो, छोड़ो; है, लेकिन भगवान अंदर हो और प्रेम न हो तो? प्रेम होगा, भक्ति होगी तो ईश्वर जो अंदर बैठा है वो हमें पापकर्म से रोकता नहीं है। प्रेम होगा वो पाप से रोकेगा। हृदय में भगवान तो है निरंतर। होना चाहिए लेकिन दशरथ को कुबूल नहीं। भगवान भटकने से रोकता नहीं, भक्ति रोकेगी; क्योंकि गुरु याद आयेगा, 'मानस' याद आयेगा। तो, भक्ति को प्रेम कहा है। दशरथ के दिल में प्रेम है। हृदय में भगति और दूसरे कमरे में 'सारंगपानी।' अब हमारा सवाल क्या है, हमारे दिमाग में प्यार नहीं है, विचार है!

दशरथ का ये दर्शन बड़ा प्यारा लगता है। बुद्धि में विचार नहीं, सारंगपाणि रहता है। क्यों? हम भूल गये है कि बुद्धि में परमात्मा रहेगा तो अंदर जो रहेगा वो ही द्वार खोलेगा। आप बाहर से दरवाजा खटखटाओ, तो खोलेगा जो अंदर रहेगा वो ही। बुद्धि जब बंधियार हो जाएगी तब अंदर सारंगपाणि बैठा होगा वो ही दरवाजा खोलेगा, वो ही निर्णय देगा कि बच्चा, ये कर। क्योंकि 'बुद्धि प्रेरक सिव', 'मानस' कहता है। और हमारे यहां इश्वर दिमागी वस्तु नहीं है, ऐसा कह दिया गया। है, है, जरूर। लेकिन कम से कम इश्वरदत्त विचार हो; गुरुदत्त विचार हो तो बहुत रहस्य खुल सकते हैं। तो, मुझे ये प्रश्न अच्छा लगता है। हृदय में प्यार और बुद्धि में परमात्मा को बिठायेगा उसकी सोच धीरे-धीरे अच्छी हो जाएगी। वहां बैठा परमात्मा रोकेगा, रोकेगा; केवल भटकायेगा नहीं।

धर्म फूलमाला नहीं है, धूंसरी है। हम लोगों ने धर्म को केवल फूलमाला समझ लिया है। 'ये धर्माचार्य है, माला पहना दो! ये मोरारिबापू है, माला पहना दो! ये कथाकार है, माला पहना दो!' माला किसीको पहनाई, वो निकालकर किसीको दे देगा! पौधे से फूल बिलग होता है तो उसके बाद खुश्बू की मात्रा भी कम हो जाती है। एक बार उसकी मूल धारा से उसको हटाया फिर खुश्बू की मात्रा कम हो जाती है, मुरझाना शुरू हो जाता है, गिर जाता है, कुचल दिया जाता है। धर्म को फूलमाला समझ लिया जाय तो धर्म की दशा भी यही हो सकती है।

दशरथजी योगी भी है,
राम के वियोगी भी है और
कभी भोगी के रूप में भी है

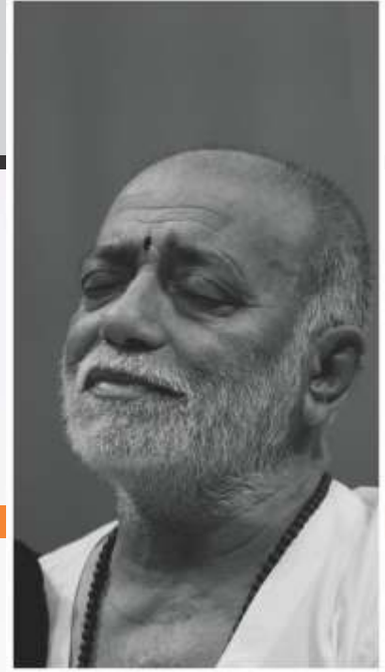

बाप! आज की कथा के आरंभ में आप सभी को 'गीता-जयंती' की बहुत-बहुत बधाई, शुभकामनाएं। साथ-साथ आप सब को मेरा प्रणाम। 'मानस-दसरथ', महाराजा दशरथजी को केन्द्र में रखकर इस कथा की उत्सवमूर्ति बनाकर हम 'मानस' के आधार पर कुछ विशेष दर्शन कर रहे हैं। भूल-चूक हो सकती है लेकिन 'रामचरित मानस' में 'दसरथ' शब्द बहुत बार आया है। 'धर्मधुरंधर' शब्द केवल नव बार आया है। पूर्णांक में गोस्वामीजी 'धर्मधुरंधर' शब्द की वंदना करते हैं। कल एक चर्चा हुई थी कि-

धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ।

धर्मधुरंधर दशरथजी ने धैर्य धारण किया और फिर नेत्र खोले। मुझे संवाद करते हुए आप से ये कहना है कि धीरज की व्याख्या क्या है? शिवसूत्र में आया है, मैं उसका बार-बार स्मरण करता रहता हूं,'धैर्यकंथा।' धैर्य तेरी गुदड़ी है। हम सब कहते हैं कि धैर्य रखो, धीरज रखो। हो जाएगा, सब ठीक हो जाएगा आदि-आदि हम कहते हैं। लेकिन वो धैर्य हमारे में आया कि नहीं आया, कुछ आत्मानुभव है? मुझे यहां गोस्वामीजी के शब्दों में इस 'धरम धुरंधर' की व्याख्या करते हुए तुलसी के शब्दों में एक विशेष बात मिल रही है, सो मैं आप से शेर करना चाहता हूं।

युवान भाई-बहन, धैर्य रखे वो धर्मधुरंधर लेकिन धैर्य आया, धीरज आई, प्रमाण क्या? सीधा-सादा प्रमाण, आंख खुल जाय। जब तक आंख न खुले तब तक समझना अभी धैर्य नहीं आया है। अधैर्य आदमी को अंधा कर देता है। 'महाभारत' इस प्रकार का एक धृतराष्ट्री स्वभाव का बहुत बड़ा प्रमाण है। अब हम क्या कहते हैं कि धीरज धारण करो, आंखें बंद कर लो। आंखें खुल जाय मानी विवेक जग जाय। आंखें खुल जाय मानी समझ का प्रगटीकरण हो जाय। बहुत कठिन स्थिति है ये लेकिन आंखें खुल जाय का मतलब है ज्ञान हो जाय। तो दशरथजी की आंख खुल गई।

मैं 'गीता-जयंती' के प्रवचन में भी सुबह कह रहा था वो ही प्रश्न मैं आप से भी पूछुं कि आप अपने जीवन में सगुन चाहते हैं कि सगुन प्राप्त हो, शुभ की प्राप्ति हो? हम हमारे जीवन में विपत्ति न हो, संपत्ति हो ये चाहते हैं। चाहते हैं न हम? सीधी-सी बात है। आप शायद इतनी उंचाई पर चले गये हो और न चाहते हो तो खबर नहीं! लेकिन यदि इस संपत्ति को मैं दैवी संपदा कहूं तो मैं तो चाहता हूं। तीसरी वस्तु है, मन की शांति हम चाहते हैं। आप को अच्छे सोफे पर बैठा दिया जाय, आप को कोई सत्ता की कुर्सी पर बैठा दिया जाय, कोई विशेष आयोग का आप को

चेरमेन बना दिया जाय, अच्छा लगता है। लेकिन मैं आप से पूछुं, कमर का दर्द हो तो? ये सोफा भी अच्छा नहीं लगता, ये सिंहासन भी अच्छा नहीं लगता, ये कुर्सी अच्छी नहीं लगती। कमर का दर्द न हो तो वृक्ष की छांव भी अच्छी लगती है। जीवन का सत्य यही है। और ये समझ में आ जाय उसी को मैं आंख खुल गई समझता हूं।

हमें संपत्ति चाहिए। संपत्ति कोई बुरी बात है ही नहीं। ध्यान दो, मैं साफ कहना चाहूंगा, रूपया-पैसा खराब है ही नहीं, खराब लोभ है। प्रेम खराब है ही नहीं, मोह खराब है। तो हम सब संपत्ति चाहते हैं; शांति चाहते हैं। चार कारण के लिए हमें ये नहीं मिलता और ये चार कारण समझ में न आये तो समझना हमारे मन में धीरज नहीं है, आंख बंद है। हम कहते हैं ना कि कुछ अनुभव के बाद उनकी आंख खुल गई, समझ आ गई, चेतना जाग गई। उपलब्ध सामग्री का अतिशय गर्व बुरा है। और ये जब अतिशय गर्व आता है तो आंख बंद हो जाती है; धर्मधुरंधरता खंडित हो जाती है। अच्छा लगता है, महाराज दशरथजी ने समय पर आंख खोल दी। आप कहेंगे कि दशरथजी अंध थे? जी; इतना मोह महाराज को क्यों हुआ? और तुलसीजी कहते हैं-

मोह न अंध कीन्ह केहि केही ।
को जग काम नचाव न जेही ।।

राम का बाप! ब्रह्म का बाप! दो पात्र है 'दश' शब्द से शुरु होनेवाला। एक है 'दशानन' एक है 'दशरथ।' केन्द्र में है राम। मानसिकता दोनों की बिलग है। दशरथ इस रामतत्त्व को पुत्र मानता है, दशानन रामतत्त्व को शत्रु मानता है। मुख भोग का प्रतीक है। और रथ संयम का प्रतीक है। रथ में घोड़ें होते हैं, बागडोर भी होती है, कोई अच्छा सारथि होता है। और तुलसी ने हमारे लिए एक सारथि नियुक्त किया है 'रामचरित मानस' में। बड़भागी थे दशरथ और राम कि जिसको सुमंत सारथि मिला। हमें तो कोई ऐसा सारथि नहीं मिलता! कौन हमारा नियंत्रण करे? कौन हमें थामें? कौन हमारे कंधे पर हाथ रखकर कहे कि ग्लानि मत कर, दिल को ग्लानिग्रस्त मत कर। तुलसी ने बहुत प्यारा सारथि नियुक्त कर दिया है और उस सारथि का नाम है 'भजन।' भजन से बड़ा कोई सारथि नहीं है। 'मानस' में लिखा है-

ईस भजनु सारथी सुजाना ।
बिरति चर्म संतोष कृपाना ।।

और भजन रूपी सारथि जिसके जीवनरथ का सारथ्य करता है उसमें वैराग आयेगा ही। इसीलिए शब्द क्रम जो जोड़ा है ये; यद्यपि ये शस्त्रों की चर्चा है। लेकिन शास्त्र का अर्क है। कौन हमारी आंखें खोले? कौन हमारी धर्मधुरंधरता को अखंडित रखे? चाहते हैं हम शांति, शांति, शुभ। लेकिन हमारे कारण उसमें आगे गड़बड़ है क्योंकि अति गर्व! स्वामी शरणानंदजी महाराज ने भी कभी कहा है कि प्राप्य सामग्री का अतिशय गर्व आदमी के पतन का कारण है।

तो, रावण पंडित है, ज्ञानी है। कहते हैं, रावण के घर स्वयं ब्रह्माजी सुबह-सुबह आते थे वेद का पारायण करने के लिए। उसकी पूजा ग्रहण करने के लिए शिव कैलास से स्वयं आया करते थे। तुलसी का ऐसा मत है। इतना बड़ा आदमी! आंख क्यों नहीं खुली? एक अर्थ में सामने ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि ठीक नहीं हो रहा है, फिर भी आंखें क्यों नहीं खुली? तब मेरे गोस्वामीजी एक सूत्रपात करते हैं-

अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते ।

आदमी चलता है तो तुलसी ने कहा, 'स्रवहिं आयुध हाथ ते।' रावण के हाथ से हथियार गिरने लगे। ब्राह्मण और ऋषि के हाथ से शास्त्र गिर जाय तो अशुभ है। क्षत्रिय के हाथ से शस्त्र गिर जाय तो अशुभ है। वैश्य के हाथ से गौ सेवा, कलम छूट जाय, हिसाब-किताब छूट जाय, वाणिज्य छूट जाय तो अपशुकन। और अपने-अपने ढ़ंग से जो सेवा करत हैं, जैसे मैं 'रामायण' गाकर सेवा करता हूं, वैसे जो सेवक हैं उसके पास से जब सेव्यभाव छूट जाय तो असगुन। रावण के हथियार छूट रहे हैं लेकिन अति गर्व के कारण वो गिनता नहीं है!

तुलसी कहते हैं, मानो काल का दूत हो ऐसे उलूक बोल रहे हैं। तो आंख क्यों नहीं खुलती? उसका कारण गोस्वामीजी 'लंकाकांड' में देते हैं। 'लंकाकांड' 'युद्धकांड' नहीं है, मेरी समझ में 'बुद्धकांड' है। 'लंकाकांड' कोई समझ ले तो बुद्धत्व प्राप्त होने में देर नहीं लगती। 'रामचरित मानस' में लिखा है-

बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़।

बीस-बीस नेत्रों होने के बाद भी तू अंध है, ऐसा कहा है! तत्त्वत: अंध नहीं था। अंदर की प्रज्ञा जागी थी। लेकिन हम को सिखाने के लिए कि सुख चाहते हो, शांति चाहते हो, शुभ चाहते हो, तो चार चीज से बचो। मेरे जीवन से सीखो।

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम।।

उसको कभी शुभ मिलता है, संपत्ति मिलती है, सपने में भी शांति मिल सकती है? तुलसी कहे, नहीं मिलती। किसको? जो दूसरों का द्रोह ही करता रहे। दूसरों के द्रोह में निरंतर रत रहता हो उसको न संपत्ति मिलती है मेरे श्रावक भाई-बहन, न शांति मिलती है, न संपदा मिलती है। रावण अपने जीवन से बता रहा है कि उपर-उपर से आप को दिखेगा कि मुझे संपत्ति नहीं मिली, लेकिन उपर से देखो तो भी मेरे समान संपत्ति किसके पास रही? कितना ही आक्रमण हो लेकिन मेरे मन में शंका या भय नहीं। मेरे समान मन की शांति किसके पास है? और मेरा निर्वाण होनेवाला है। मेरे समान शुभ किसका होनेवाला है? लेकिन हमें सीख दे रहा है, हमारी आंख खोल रहा है। हमारी धर्मधुरंधरता खंडित न हो जाय, धैर्य बरकरार रहे इसीलिए चार सूत्र आये। जो दूसरों का द्रोह करता होगा उसको संपत्ति, शांति कतई नहीं मिलती। 'मोहबस'; रावण को गोस्वामीजी ने 'विनयपत्रिका' में मोह का प्रतीक कहा है। तीसरा सूत्र 'राम बिमुख।' जो राम से विमुख हो गया। राम किसी से विमुख नहीं है। ध्यान देना, जीव सन्मुख नहीं है। एक दूसरा सूत्र आप जानते हैं-

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

जीव विमुख हो जाता है। इश्वर तो प्रतिपल यहां देखो, यहां है; उधर देखो तो उधर है; अंदर देखो, बाहर देखो। ओशो कहते हैं, 'सत्य भीतर है, भीतर खोजो।' रामदुलारी बापू कहते हैं, 'सत्य सभी जगह है, कहीं भी खोजो।' उसके बाद हमारे ब्रह्मवेदांतजी मुझे कहे, 'बापू, मेरे पास ये बात आई तो मैंने कहा कि जब तक खोजनेवाला है तब तक सत्य मिलेगा कहां?' तो, मुझे ब्रह्मवेदांतजी कहते थे, 'बापू, आप को कुछ कहना है?' मैंने कहा, मैं इस लाईन में नहीं हूं! आप तो बड़े-बड़े साहब! मुझे रहने दो! तो फिर मुझे पूछ रहे थे जो साथ में थे, बापू, कुछ तो कहो? तो मैंने कहा, मुझे इतना ही कहना है कि सत्य कहां खो गया है कि खोजने की जरूरत पड़े?

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी।।

मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, ये परमसत्य सब में मौजूद है। सभी काल, सभी जगह वो तत्त्व मौजूद है। गोस्वामीजी की प्रसिद्ध पंक्तियां-

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।
सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

तो सत्य कहां खोया हुआ है कि भीतर-बाहर, इधर-उधर खोजा जाय! सत्य मौजूद है, पहचानना बाकी है। पाया हुआ है, केवल पहचान बाकी है; और पहचाना तभी जाता है कि कोई हमारी आंख खोल दे ऐसे बुद्धपुरुष मिल जाय।

जीव विमुख है, इश्वर विमुख नहीं है। ये तो सर्वत्र, सर्वकाल, सर्वदेशीय है। और चौथा, संपत्ति चाहते हुए नहीं मिलती, शुभ चाहते हुए नहीं प्राप्त हो रहा है, मन की शांति हम चाहते हुए नहीं प्राप्त कर सकते, उसका चौथा सूत्र है, 'राम बिमुख रति काम।'

कामनाओं का अतिरेक। कामनाओं के अतिरेक में आसक्ति। 'रति' का अर्थ होता है भक्तिमारग में जो क्षण-क्षण बढ़े उसको रति कहते हैं। तो, जिसकी कामना में रति अनुदिन बढ़े उसको संपत्ति, चैन और सगुन प्राप्त नहीं होता। और ये न प्राप्त हो तब तक समझना चाहिए हमारी आंख खुली नहीं।

कथा क्या है? बोलनेवाले की, सुननेवाले की दोनों की आंख खोलनेवाला एक गुणातीत प्रयोग है। कृष्ण अर्जुन को कहते हैं-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

परमात्मा कहते हैं, तू मुझ में मन रखनेवाला हो। हम सब चाहते हैं कि हमारा मन भगवान में हो। होता नहीं है, चाहते तो है! भगवान में मन तभी लगेगा जब ममता जगेगी। जिस चीज़ पर ममता जगती है वहां मन निरंतर वास करता है। ममता को बहुत गालियां दी गई है। 'ममता मारो...!' हमारे प्राचीन भजनकारों ने भी कहा है-

मारी ममता मरे नहीं एनुं मारे शुं करवुं?

ये बिलकुल सही बात है संतो ने जो कहा। लेकिन 'रामचरित मानस' अपनी अदा से चलता है। ये कोई पंथ-परंपरा का शास्त्र नहीं है, साहब! ये जहां जाता है वहां कई रास्ता खोल देता है। तो, ममता को दीक्षित किया गया है 'रामचरित मानस' में-

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।

ममता रखो तो मन लगेगा। मेरी आप से ममता है। ये ममता का जो परिणाम आये मैं भोगने को तैयार हूं। लेकिन ममता है तो है! आप सुनते नहीं तो किसके सामने गायें?

तो बाप! तुलसी सभी विकारों को दीक्षित करते हैं। विकारों को स्नान कराया है तुलसी ने। तो तुलसी ममता का समर्थन करते हैं। तो मैं आप से ये निवेदन करता हूं कि जहां ममता होती है वहां मन लगता है; माँ कोई भी काम करती है, मन बच्चे में रहता है; सीधी-सी बात है। भगवान कहते हैं, 'मन्मना भव।' तू मुझ में मन रखनेवाला हो। तो होना तो है हमें, करे क्या? तुलसी कहते हैं-

सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।

ममता रखो हरि में। 'मन्मना भव मद्भक्तो।' हम सब को भक्त होना है। किसको भक्त नहीं होना है? होना है, करे क्या? भक्त होना है तो एक ही सूत्र, समता रखो। भक्त वो है जो कभी विषमता नहीं करता। 'गीता' 'सम' पर बल दिया करती है। मेरे तुलसीदासजी सूत्र देते हैं कि 'जिमि घट कोटि एक रबि छाहि।' एक लाख घड़ें रख दो पानी भरके। सूरज एक होता है लेकिन एक लाख घड़े में सूरज प्रतिबिंबित होता है। वैसे परमात्मा अपने भिन्न-भिन्न रूप में सब में होता है। भेद छोड़ो भक्त होना है तो।

'मद्याजी'; 'मेरा पूजन कर, मेरी अर्चा कर', भगवान कहे। ये गज़ब का आदमी है कृष्ण! सामने से कोई कहे कि तू मेरी पूजा कर! कैसा लगे? 'मेरी आरती उतार', कोई सामने से कहे? हिंमतवालें कहते भी है! हमें करना है, लो! कृष्ण मिले तो हम क्यों न करे? लेकिन कैसे करे वो नहीं बताता है! तो फिर कहना पड़ता है कि अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार भगवान की पूजा करो। और 'मां नमस्कुरु।' भगवान कहते हैं, मुझे प्रणाम कर, मेरे सामने झुक। गज़ब का आदमी है! हम सब को नमस्कार करना है कृष्ण को, तो कैसे करे? नम्रता के बिना नमस्कार सफल नहीं होता। अंदर की विनम्रता होनी चाहिए, ऋजुता होनी चाहिए। बाहर से दंडवत् करो और अंदर अहंकार है तो? तो मुश्किल है।

आज मुझे एक श्रोता ने पूछा भी है कि 'बापू, आप 'गीता-जयंती' पर बोलने गये थे तो हम नहीं कुछ सुन पाये हैं, तो जरा कह देना। तो मैं सार-सार कह रहा हूं। और प्रसंगोचित भी लगता है। और 'गीता-जयंती' का दिन है तो मैं परवश भी हो जाता हूं। सीधी-सी बात है। क्योंकि हम को हमारे विष्णुदेवानंदगिरिदादा जो मेरे

दादाजी थे, संन्यास जगत में गये उसके बाद उसने एक पोस्टकार्ड लिखा था कि बच्चों को कहना 'गीता' का पाठ करे और 'रामचरित मानस' न भूले। तो, 'गीता' के प्रति लगाव है। और किसको लगाव नहीं, यार! तो आंख खुले इसके लिए निरंतर बढ़नेवाली काम रति कम हो। महाराज दशरथजी की आंख खुल गई। दशानन को 'मानस' में अंध कहा। दशरथजी की आंख भले वो इस स्थिति में थे उस समय किसी कारणवश ये आंख बंद हुई है लेकिन खुल गई मौके पर इसीलिए उसको धैर्यवान और धरमधुरंधर कहा है।

तो, दशरथजी का बिलग-बिलग रूप जो 'मानस' में मिलता है उसमें ये तो दशरथजी का परिचय है लेकिन एक परिचय जो वंदना प्रकरण में तुलसीजी ने दिया है-

बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद ।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ।।

जिसको राम के चरण में सच्चा प्रेम है। और वो दिखा उसने कि जब राम वियोग हुआ तो तिनके की तरह महाराज दशरथजी ने अपना प्राण त्याग दिया। इसका सीधा-सादा अर्थ जो है वो ये है। लेकिन एक ही दोहे में सत्य, प्रेम, करुणा का संकेत है। मेरे कहने का मतलब दशरथजी का प्रेम संयोग में प्रगट होता है। संयोग न हो तो दशरथजी प्राण छोड़ देते हैं। संयोगी प्रेमी है दशरथजी, ध्यान देना। राम का संयोग छूटा तो प्राण गया। इसीलिए दशरथजी संयोगी प्रेमी है। और एक दूसरा सम्राट महाराज जनक वियोगी प्रेमी है। दूसरे अर्थ में, एक अर्थ में ये भी ले सकते हो कि सत्य प्रेम का दर्शन तभी हुआ कि राम चले गये तो प्राण छोड़ दिये। और यहां महाराजा जनकजी तो सब जोग-भोग में छिपाकर रहते थे। और जनक ऐसे हैं कि जब राम का दर्शन हुआ, मिलन हुआ तो दबा हुआ प्रेम प्रगट हो गया।

तो, बहुत एंगल से कितना परिचय 'रामचरित मानस' में दिया है दशरथजी का बिलग-बिगग रूप से! हम तो इतना ही समझें कि जीवधर्म के नाते हम दशानन नहीं, दशरथ हो। तो, जिसके मुख में निरंतर आसुरीवृत्तिओं का संग्रह है वो दशाननवृत्ति। और दाशरथीवृत्ति वो जो नियंत्रित वृत्ति है। दशरथजी में भोगभाव नहीं है, ऐसा नहीं है। दशरथजी जब कैकयी को मिलने गये राम-राज्य की चर्चा हो गई वशिष्ठजी के साथ कि कल राम को युवराजपद दे दो, आदि-आदि सब निर्णय हो गया। तुलसीजी लिखते हैं 'मानस' के 'अयोध्याकांड' में-

साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ ।।

सांज़ के समय आनंद से भरे दशरथजी कैकेयी के भवन में गये और सोच रहे हैं कि कैकेयी को मैं ख़बर करूंगा तो

ओशो कहते हैं, 'सत्य भीतर है, भीतर खोजो।' रामदुलारी बापू कहते हैं, 'सत्य सभी जगह है। कहीं भी खोजो।' उसके बाद हमारे ब्रह्मवेदांतजी मुझे कहे, 'बापू, मेरे पास ये बात आई तो मैंने कहा कि जब तक खोजनेवाला है तब तक सत्य मिलेगा कहां?' तो, मुझे ब्रह्मवेदांतजी कहते थे, 'बापू, आप को कुछ कहना है?' तो मैंने कहा, मुझे इतना ही कहना है कि सत्य कहां खो गया है कि खोजने की जरूरत पड़े? सत्य कहां खोया हुआ है कि भीतर-बाहर, इधर-उधर खोजा जाय! सत्य मौजूद है, पहचानना बाकी है। पाया हुआ है, केवल पहचान बाकी है; और पहचाना तभी जाता है कि कोई हमारी आंख खोल दे ऐसे बुद्धपुरुष मिल जाय।

कितनी खुश हो जायेगी? और फिर आप जानते हैं कि मंथरा ने जब दशरथजी को कहा कि आप महाराणी के बारे में पूछ रहे हैं लेकिन महाराणी हम को मन की बात थोड़ी बताती है, वो तो कोपभवन में है। महाराणी कोप भवन में? और गोस्वामीजी कहते हैं कि जब दशरथजी के कान में ये बात आई कि कैकेयी कोप भवन में है, गुस्से में है; ये जब सुना तो जो सानंद अवस्था में दशरथजी कैकेयी के भवन में प्रवेश कर रहे थे मानो स्नेहविग्रह धारण करके जा रहे थे वो ही कदम लड़खड़ा गये है! यहां दशरथजी का दर्शन एक बिलग रूप में आता है।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राउ ।
भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ ।।

प्रेम में भय नहीं लगता, मोह ही भय देता है। उजाले में किसीको भय नहीं लगता, भय अंधेरे में लगता है। और मोह अंधेरा है, मोह निशा है। तो भय लगा। ध्यान देना, मैं 'प्रेम', 'प्रेम' शब्द बोल रहा हूं तो गलत अर्थ करो तो आप की जिम्मेवारी। यहां प्रेम नारदवाला, भक्तिसूत्रवाला प्रेम। यहां प्रेम शांडिल्यवाला प्रेम। यहां आदि, मध्य और अंत में तुलसी ने इस शास्त्र में प्रेम ही सिद्ध किया है। और शास्त्र का नियम है शास्त्र में आदि, मध्य और अंत में मुख्य तत्त्व का प्रतिपादन करना होता है। ये शास्त्र का नियम है। ये प्रेमशास्त्र है, धर्मशास्त्र नहीं है। 'रामचरित मानस' प्रेमशास्त्र है। तो, प्रेम में भय न हो। सच्चा प्रेम डरेगा नहीं, मर्यादा रखेगा। शील नहीं चुकेगा; त्याग करेगा, बलिदान देगा। तो, दशरथजी डरे हैं। भयभीत हो गये हैं। दशरथ का एक बिलग प्रकार का परिचय। साक्षात् स्वर्ग का मालिक इन्द्र जिसके बाहुबल से सलामत रहता है ऐसे दशरथजी! और धरती के जितने राजा है वो दशरथजी के रुख ताकते रहते हैं कि क्या ईशारा हो।

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई ।
देखहु काम प्रताप बड़ाई ।।

ऐसे दशरथजी एक स्त्री रुठी है वो देखकर सुख गये; आगे कदम न उठा पाये! तब तुलसी ने दो-टूक अभिप्राय दे दिया कि काम की महिमा देखो कि इतना बड़ा राजा स्तंभित हो गया! तो, दशरथ का यहां वंदना में एक रूप है प्रेमी। वियोग हुआ तो प्रेम सत्य करके दिखा दिया; प्राणत्याग दिया। और यहां एक भोगी के रूप दर्शन करा देते हैं। आदमी है, साहब! मैं बार-बार कहता हूं युवान भाई-बहनों, दुनिया में सब का स्वीकार उनकी कमजोरियों के साथ करना। पूर्ण केवल परमात्मा है। आदमी है, कमज़ोरियां होती है, साहब! देवताओं में कमज़ोरियां आई है! बड़े-बड़े ऋषि-मुनिओं में कमज़ोरियां आई है, साहब! इन्सान बेचारा किस खेत की मूली है! दीक्षित दनकौरी का शे'र याद आता है-

या तो कुबूल कर मुझे कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाईयों के साथ।

तो, यहां दशरथजी की कमजोरी थी गोस्वामीजी ने पेश की, 'देखहु काम प्रताप बड़ाई।' इतना बड़ा सम्राट आगे कदम न रख पाया! एक स्त्री का रोष सुनकर वो सुख गया जो अभी-अभी सानंद था! म्लान हो गया! एक दूसरा ही रूप यहां दशरथजी का दिखाया गया। दशरथजी सुख गये एक नारी के रोष के कारण! कामरूपी सर्प जब काटता है तो विषय की नीम की पत्ती आदमी को मीठी लगती है। दशरथजी कहते हैं-

बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि ।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ।।

आदमी अपने आप को मर्यादा अनुभव करता है। लेकिन काम अंध कर देता है, साहब! हमें और आप को धैर्य सिखाने के लिए और हमारी आंख खोलने के लिए तुलसी एक दूसरा रूप दिखाते हैं। दशरथजी को योगी भी कहा तुलसी ने और आज भोगी के रूप में पेश कर रहे हैं। लेकिन तुलसीदासजी को मानवी को इस रूप में पेश करना है, मानवी की कमज़ोरियां भी मानव को पता लगे। तो दशरथ योगी भी है। दशरथ राम के वियोगी भी है। और यहां दसरथजी का रूप कुछ-कुछ भोगी के रूप में भी प्रदर्शित किया गया है।

धार्मिक जीवन बिलग है, आध्यात्मिक जीवन बिलग है

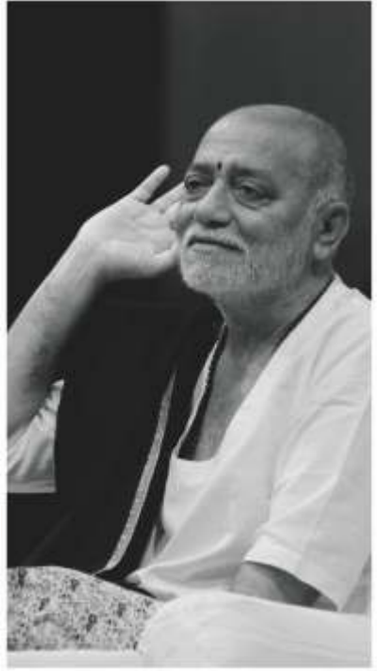

'मानस-दसरथ', जिसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा तुलसी-दर्शन के माध्यम से हो रही है। आगे बढ़ें। आज मेरी मानसिकता ऐसी है कि रामजनम की कथा गा लूं। रामनाम की महिमा का गायन हुआ क्रम में। फिर 'मानस' कथाक्रम में कथा का थोड़ा इतिहास दिया है। आज मेरे पास ये प्रश्न भी है कि सब से पहला कवि वाल्मीकि है, शिव है, तुलसी है कि कौन है? सब से पहला 'मानस' का कवि तो शिव है। इसीलिए रामकथा जगत के मनीषिओं ने कहा है, वाल्मीकि आदि कवि है, लेकिन शंकर अनादि कवि है। वाल्मीकि यद्यपि कागज पर लिखनेवाले आदि कवि है, लेकिन कलेजे पर लिखनेवाले पहले कवि शंकर है।

रचि महेस निज मानस राखा ।

उसके बाद ये कथा का हस्तांतरण हुआ। कथा का ये गंगप्रवाह एक दूसरे पात्र के पास गया। कथा दूसरे कलेजे में उड़ैल दी। भुसुंडि को मिली। भुसुंडि ने गरुड के प्रति गायन किया। शिव ने पार्वती के प्रति गायन किया। वो कथा फिर धरा धाम पर आई। परम विवेकी याज्ञवल्क्य ने बिलकुल शरणागत-प्रपन्न भरद्वाजजी को तीरथराज प्रयाग में ये कथा सुनाई। फिर यही कथा का प्रवाह गोस्वामीजी कहते हैं, मुझे मेरे गुरु से प्राप्त हुआ। कृपालु गुरु ने बार-बार रिपिट किया, सुनाते रहे तब कभी कुछ बुद्धि में उतरा। और जैसे मेरी बुद्धि ने थोड़ी इस कथा को ग्रहण की इस कथा को मैं भाषाबद्ध करूं। 'मोरें मन प्रबोध जेहिं होई।' ताकि मेरे मन को बोध हो। तुलसी की रामकथा का प्रधान श्रोता अपना मन है। वेदांत में माना गया है कि जो व्यक्ति खुद को नहीं जान पाता वो खुदा को कभी नहीं जान पाता। हम हमारें बारे में दूसरा क्या कहता है, उसको हमारा परिचय समझ लेते हैं! हमारे बारे में हमारी अंतरात्मा क्या कहती है, वो देखना पड़ता है। तुलसी का ये मत बड़ा प्यारा है कि मैंने कथा को भाषाबद्ध करने का शिवसंकल्प किया ताकि मेरे मन को बोध हो।

जैसे कि शिव तो केवल पार्वती को ही केन्द्र में रखकर कथा कहते हैं, लेकिन सुनी अस्तित्व ने। कागभुसुंडिजी प्रधान श्रोता के रूप में खगपति गरुड को ही कथा कहते हैं, सुनी कई लोगों ने। हंसों ने, परमहंसों ने। याज्ञवल्क्यजी ने कथा केवल भरद्वाजजी को केन्द्र में रखते हुए की है लेकिन सुनी तीरथराज प्रयाग के सभी कुंभमेले ने।

वैसे तुलसी ने प्रधान श्रोता के रूप में केवल, केवल और केवल अपने मन को ही अधिकारी समझा, पात्र माना; सुनी समस्त मानवजात ने। कहा गया खुद के मन को, सब संतों ने प्रयत्न किया मन को समझाने का। चली इस प्रवाही परंपरा इस तरह। उसके बाद हम सब को कथा की गंगा मिलती रही अपनी-अपनी पात्रता के अनुसार। रामकथा गुरुमंत्र है; ये महामंत्र है। मैं थोड़ा कहता हूं?

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के ।
मेटत कठिन कुअंक भाल के ।।

मेरे श्रोताओं को मैं थोड़ा धोखा दे सकता हूं, साहब! हां? तो तो मेरी जबान टूट जाय! गिर जाय! चोक्कस पूर्ण भरोसा होना चाहिए, रामकथा खराब लेख को बदल देती है। गुजरातीमां कहे ने, लेख उपर मेख मारी द्ये। ये मंत्र महामनि है। फिर तुलसी ने चार संवाद रचे। शिव-पार्वती के संवाद को नाम दिया ज्ञानसंवाद। भुसुंडि और गरुड के संवाद को नाम दिया उपासना का संवाद। याज्ञवल्क्य-भरद्वाजजी के संवाद का नाम दिया कर्म का संवाद। तुलसी ने मन के साथ गुफ्तगू की उसका नाम दिया केवल, केवल, केवल शरणागति का संवाद।

चली सुभग कबिता सरिता सो ।
राम बिमल जस जल भरिता सो ।।

तुलसी की ये कविता रूपी सरिता इस तरह बही। राम के निर्मल यशरूपी जल भरकर ये कविता चली धीरे-धीरे।

तो याज्ञवल्क्य ने भरद्वाजजी के सामने कथा आरंभ की कुंभ के मेले के अवसर भरद्वाजजी की जिज्ञासा पर कि रामतत्त्व क्या है, प्रभु बताईए। भरद्वाजजी कहते हैं, मुझे ये ऐतिहासिक राम का पता है, लेकिन अध्यात्म राम कौन है? एक वस्तु ओर समझे मेरे श्रोतागण, धार्मिक जीवन बिलग है, आध्यात्मिक जीवन बिलग है। धार्मिक जीवन अपने पूर्वजों अथवा पूर्वाचार्यों के दृष्टिकोण पर एक ही दिशा में चलता है। अध्यात्म जीवन सर्व को छूता है। यद्यपि सत्य,प्रेम,करुणा जो दशरथ की वंदना में एक दोहे में जो लगता है, इससे मैं आध्यात्मिक भी कहूं। लेकिन दशरथजी अध्यात्म की तुलना में धार्मिक व्यक्ति ज्यादा है। राम पूर्णत: अध्यात्म है। 'महाभारत' के पांडव धार्मिक है। 'महाभारत' में व्यास कहते हैं, पांडवों का विजय इसीलिए निश्चित है क्योंकि इस पक्ष में धर्म भी है और कृष्ण भी है। धर्म यहां कई अर्थों में है। धर्म यानी धर्मराज युधिष्ठिर व्यक्ति के रूप में है; और कृष्ण तो है ही। दूसरा, धर्म और कृष्ण है ऐसा जब व्यास कहते हैं तब यहां ये कहना चाहता है कि इसके पास कृष्ण भी है और पूर्णत: अध्यात्म भी है।

अध्यात्म सब को छूएगा। उसमें ध्यान का भी स्वीकार, पूजा का भी स्वीकार, अर्चा का भी स्वीकार; आरती का भी स्वीकार, धूप का भी स्वीकार; साकार का भी स्वीकार, निराकार का भी स्वीकार; मंदिर का भी स्वीकार, मस्जिद का भी स्वीकार, गुरुद्वारा का भी स्वीकार। मैं मेरे गुरु की कृपा से आप को चुन-चुनकर बता सकता हूं कि ये धार्मिक है, ये आध्यात्मिक है। लेकिन इससे कहीं आप की श्रद्धा को ठेस भी लग सकती है, इसलिए मैं मेरे बोल को रोकूं।

आध्यात्मिक जीवन कुछ बिलग ढ़ंग का जीवन है। धर्मप्रधान जीवन शायद राजनीति में जाय तो भी जा सकता है, लेकिन न जाय तो अच्छा। राजनीति नहीं सुधरेगी, राजनीति धरम को बिगाड देगी! लेकिन आध्यात्मिक व्यक्ति राजनीति में जाये तो गंगाजल से राजनीति की गटर को विशुद्ध कर देगी। महात्मा गांधी एक ऐसे थे। आप मुझे बताईए कि गांधीजी धार्मिक थे? प्रार्थना करते थे। वो प्रार्थना भी सर्वधर्म प्रार्थना थी। चुन-चुनकर पूरी दुनिया का सत्य इकठ्ठा किया था; एक अर्क, एक ज्यूस बना लिया था इस महात्मा ने। सुबह-शाम सब को दो-दो चम्मच पिलाते थे, प्रार्थना के पथ पर। जहां-जहां से सत्य मिला रस्किन से, टोल्स्टोय से, जिसस से, बुद्ध से, श्रीमद् राजचंद्र से, टागोर से, अरे

छोड़ो, कस्तुरबा से, इवन झीणा से मिला, जहां-जहां से मिला, लिया। गांधी है आध्यात्मिक। गांधी के नाम पर बिनसांप्रदायिक की बातें करनेवालें सब किसी न किसी धर्म का लाभ ले रहे हैं!

तो, ये जिज्ञासा पर याज्ञवल्क्य ऋषि ने तीरथराज प्रयाग में भरद्वाजजी को निमित्त बनाकर कथा सुनाई। कथा सुनाई जाती है तब वहां जितने बैठे हैं इतने ही नहीं सुनते हैं, कई और तत्त्व भी सुनते रहते हैं। ये मिस्ट्री है, ये रहस्यों का रहस्य है। कई चेतनाएं शरीर से मुक्त घूमती रहती है। आप को अचानक कोई विचार आये कि मुझे ये करना चाहिए। तो वो अशरीरी चेतना आप को कहती है कि हमारे पास बोड़ी नहीं है, तेरे पास अभी बोडी है, थोड़ा ये काम कर दे। तभी ये आत्मा कार्यरत होती है। ये रहस्यमय दुनिया के कुछ संकेत है।

तो, केवल एक ही व्यक्ति ने नहीं सुना है। संसार में जो-जो अधिकारी रहे होंगे सब ने सुना है। अथवा तो इन इन लोगों ने सुना है जिनके कान दीक्षित हो गये थे। मेरे भाई-बहन, सद्गुरु कान को दीक्षित करता है। जन्मजात मैल-कषाय को गुरु कान से निकाल देता है, क्योंकि कान ही तो है प्रवेशद्वार! 'प्रविष्टकर्णरंध्रेन', -'श्रीमद् भागवत।' ये भाव का जो प्रवाह है वो कान के ही द्वार से डाला जाता है। कान बड़ी प्यारी इन्द्रिय है साहब! इसीलिए लोग कान पकड़ते हैं। किसी ने किसीकी पलकें पकड़ी? नहीं। बहुत महत्त्व की इन्द्रिय है कान, इसलिए मेरे गोस्वामीजी कहते हैं-

जिन्हके श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।

और कान का मेल क्या है? दूसरों के बारे में सुनी गई निंदा।

पर निंदा सम अघ न गरीसा ।।

याज्ञवल्क्य महाराज ने रामतत्त्व समझाने के लिए भरद्वाजजी को निमंत्रित किया, पहले शिवतत्त्व सुनो। शिव को सुने बिना राम समझ में नहीं आएगा। तो, पहले शिवचरित्र सुनाया। शिव-सती कुंभज से कथा सुनने गये। लौटते समय राम की लीला देखी। सती को भ्रम हुआ। शिव ने समझाया। न मानी, परीक्षा लेने गई। असफल! सीता का रूप लिया था, शिव ने ध्यान में देख लिया। अच्छा नहीं लगा। शिव ने अंदर की हरिप्रेरणा से सती का त्याग किया। सतासी हजार साल बीत गई। शिव ध्यान में थे। एक बार अपने आप समाधि से मुक्त हुए। सती ने देखा, जगतपति जागे हैं। डरती-डरती आई। शिव ने सन्मुख आसन दिया। रसाल कथा सुनाने लगे, तब दक्ष का प्रसंग आया। सती जिद्द करके दक्ष के यज्ञ में गई। मैं बार-बार इस प्रसंग पर कहता हूं कि आप को अपने परिवार में जब दृढ़ यकीन हो गया हो, परिवार की ये व्यक्ति केवल, केवल और केवल मेरे कल्याण की ही बात करती है तब उनकी बातों को ठुकराना मत। 'महाभारत' में लिखा है, वरिष्ठों की प्रामाणिक सलाह को सुने बिना विश्व में किसी युवक को विजय नहीं मिलती। मैं नहीं कहता, महामुनि व्यास कहते हैं। मैं समझकर शब्द युझ करता हूं, प्रामाणिक सलाह।

युवान भाई-बहन! समाज के धर्मराजों, समाज के युधिष्ठिरों, बड़े-बुझुर्गों की प्रामाणिक सलाह लो। बुझुर्गों की भी जिम्मेदारी बढ़ती है कि तुम्हारी सलाह भी स्वार्थपरक न हो। क्योंकि बूढ़े हो गये तो राग-द्वेष मिट गया ऐसा कभी मानना मत! दांत गिरते हैं, राग-द्वेष नहीं गिरते। बहुत जिम्मेवारी होती है। कोई जिसके चरण में नमन करता है उस आदमी की जिम्मेवारी बहुत बढ़ जाती है।

तो, भगवान शिव की बातें सती ने न मानी। पराजय निश्चित हो गया था। दक्षयज्ञ में सती जलकर भस्म हो गई। पार्वती के रूप में पर्वतराज हिमालय के घर पुत्री के रूप में प्रगट हो गई। नारद ने नामकरण किया कि तुम्हारी बेटी का नाम ऊमा, अंबिका, भवानी आदि-आदि होगा। तुम्हारी बेटी को वर ऐसा मिलेगा वो भी

नारद ने बता दिया। तप का आदेश देकर नारदजी चले गए। पार्वती ने बहुत तप किया। परमात्मा ने आकाशवाणी से आशीर्वाद दिया, तुम्हारे मनोरथ पूरे हो जायेंगे। तुम्हें शिव प्राप्त होंगे।

एक बार शिव को हुआ कि एक जगह बैठकर प्रभु को सिमरूं और उनको समाधि लग गई। शिव समाधि में, सती बन में। अंतराल में तारकासुर नामक एक राक्षस हुआ जिसने दैवीसमाज को बहुत कष्ट दिया। दैवीसमाज ब्रह्मा से जाकर कहता है कि हमें बचाओ। ब्रह्मा ने कहा, तारकासुर की मृत्यु एक ही तरीके से हो सकती है, शिव का बेटा उसको मार सकता है। बोले, शिव तो सबकुछ छोड़कर समाधि में है। बोले, आप समाधि तोड़ो; योजना करो, कामदेव को भेजो। देवताओं ने काम को निमंत्रित किया। भोलेनाथ ने चारो ओर देखा, कौन है ये मेरी समाधि में विक्षिप्त करनेवाला? और शंकर ने तीसरा नेत्र खोला और देखते ही काम जल गया! जलाने का इरादा नहीं था, साहब! दीप का इरादा अंधेरे को मिटाना है ही नहीं लेकिन दीप जले और अंधेरा मिट जाय इसमें दीप का क्या कसूर? देवताओं को अवसर मिल गया और आ गये! समूह में भगवान शिव की प्रसंशा करने लगे! शंकरजी ने मुस्कुराते हुए कहा कि प्रशंसा बंद करो, देवताओं! आप देव है, मैं महादेव हूं, इतना स्मरण रखो! मूल बात कहो, क्यों आना हुआ? परमार्थी मानसिकता स्वार्थी को जान लेती है। बोले ना वो उसका बड़प्पन होता है, याद रखना। सब देवताओं ने शंकर के स्तोत्र गान किये। हमारी सब की इच्छा है कि भोलेनाथ को कहे कि आप शादी करे। आप ब्याहो। शंकर मुस्कुराये। मेरे ठाकुर ने मुझे कहा है कि आप ब्याहना। आप कहो और मैं शादी करूं? चलो, ब्याहेंगे। गण शृंगार करने लगे। जटा का मुकुट बनाया। सांप का अहिमोड बनाया। कुंडल-कंकण की जगह पर सांप लपेटे। भस्म का लेपन किया। हाथ में डमरू-त्रिशूल धारण किया। त्रिपुंड लगाया। यज्ञोपवित भी सर्प की धारण की। नंदी पर सवार हुए हैं। भूत-प्रेत गण तैयार हुए हैं। और भूत-प्रेत की मेरी व्यासपीठ की व्याख्या है, जो भूतकाल को याद करते-करते निरंतर रोता है उसको भूत लागू हो गया है और प्रेत मानी भविष्य की चिंता में जो वर्तमान को खो देता है उसको प्रेत लागू हो गया है! पिशाच और भूत से बचना है तो इसको (हनुमानजी को) पुकारो-

भूत पिशाच निकट नहीं आवे ।
महाबीर जब नाम सुनावे ।।

हिमाचल प्रदेश में स्वागत की पूर्ण तैयारी हो गई। महादेव जब आये, सब भयभीत हो गये! रुद्ररूप देखके महाराणी मैना के हाथ से आरती गिर गई! बेहोश हो गई! नारदजी ने बोलना शुरू किया, 'मैना, तू क्यों रोती है? तू उसको तेरी बेटी समझती है? ये तेरी बेटी नहीं, ये पूरे जगत की माँ है, जगदंबा है, पराम्बा है, ब्रह्मांड भांडोदरी है ये! उसके सिवा जगत में कुछ नहीं हो सकता, ये पराशक्ति है।' जब नारद ने ये उद्घोषणा की सब पार्वती को प्रणाम करने लगे। आनंद छा गया। लोकरीतियां, वेदरीतियां शुरू हो गई। महादेव ने पार्वती का पाणिग्रहण किया। देवगण प्रसन्न हुए है। जयजयकार होता है। पार्वती समर्पित हुई महादेव को। शिव-पार्वती कैलास पहुंचे। कालमर्यादा पूरी हुई। पार्वती ने पुत्र को जनम दिया। कार्तिकेय का जनम हुआ। तारकासुर को निर्वाण प्राप्त हुआ।

शंकर एकबार कैलास के बेदबिदित वृक्ष के नीचे सहजासन में बैठे थे। पार्वती मंगल अवसर देखकर भगवान महादेव के पास आई और कहा, आप रामतत्त्व मुझे समझाईए। भगवान शंकर को बड़ी खुशी हुई, 'धन्य हो हिमालयपुत्री, तुमने ऐसी कथा पूछी जो सकल लोक को पावन करनेवाली गंगा है। तुम बड़ी उपकारी हो।' पार्वती ने अपनी प्रश्नावली रखी, निराकार साकार क्यों हुआ? सगुन क्यों हुआ? मुझे बताईए। महादेव ने कहा, उसके कई कारण है और कोई कारण है भी नहीं।

परमतत्त्व कार्य-कारण सिद्धांत में आबद्ध नहीं होता। ये सब से पर है। फिर भी आप ने पूछा है तो उसके कुछ कारण बताउं। एक तो जय-विजयवाला व्याख्यान सुना दिया, ये कारण। दूसरा, सती वृंदावाला व्याख्यान सुना दिया, वो कारण। तीसरा नारद ने श्राप दिया विष्णु को और राम होना पड़ा ये कारण। चौथा स्वयंभू मनु की कथा सुनाई, वरदान के रूप में हरि आये। पांचवां और अंतिम कारण, सत्यकेतु की प्रतापभानुवाली कथा सुनाई। आख़िर में प्रतापभानु ब्राह्मण के श्राप से रावण बना; अरिमर्दन कुंभकर्ण, धर्मरुचि विभीषण बना, ये सब कथा सुनाई।

महादेव ने पार्वती को रामजन्म की कथा सुनाने से पहले रावण के जन्म की कथा सुनाई। रावण-कुंभकर्ण-विभीषण बड़ी तपस्या करते हैं, बड़े अगम वरदान प्राप्त कर लेते हैं। रावण ने कुबेर की संपदा छिन ली। त्रिकूट पर अपना शासन स्थापित किया। देवलोक त्रस्त हो चुके। पृथ्वी अकुलाने लगी। गाय का रूप धरती ने धारण किया है। ब्रह्मा की अगवानी में, महेश की साक्षी में देवगण, मुनिगण, समग्र पृथ्वी इकठ्ठे होकर के परमतत्त्व की स्तुति करते हैं। ब्रह्मबानी प्रगट हुई, 'धैर्य धारण करो। मैं कई कारणवश और कोई कारण नहीं, प्रगट होउंगा अयोध्या में।'

कलिपावनावतार गोस्वामीजी हमें लिए चलते हैं अयोध्या, अवधपुरी। राजा दशरथ, वेदप्रसिद्ध, धर्मधुरंधर, गुणनिधिज्ञानी; हृदय में भक्ति, बुद्धि में सारंगपाणि। मुझे एक श्रोता ने पूछा है, 'सारंगपाणि को बुद्धि में क्यों रखा है?' इसलिए कि बुद्धि में तर्क पैदा न हो जाय। वो धनुष-बाण लेकर खड़ा है वहां कि तूने तर्क किया, बुद्धि व्यभिचारिणी हुई, हटा दूंगा! जैसे हनुमानजी के हृदय में भगवान रहते हैं तो कैसे रहते हैं?

जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

किसीके दिल में शस्त्र लेकर बैठना कोई शोभा है? लेकिन राम शस्त्र लेकर बैठे हैं! क्योंकि तेरे दिल में कोई कषाय आ जाय तो मैं तुरंत नष्ट कर दूं। यहां बुद्धि सारंगपाणि, क्योंकि ये बुद्धि ख़बर नहीं कहां-कहां शादी कर लेती है! कभी पैसों से, कभी प्रतिष्ठा से, कभी पद से, कभी किसी की निंदा से! ये बुद्धि की अनगनित शादियां है! धन्य है 'महाभारत' का गांगेय भीष्म जिसने कहा, हे कृष्ण! मरने की तैयारी है और मेरी बेटी के ब्याह के बिना मरूंगा तो दुनिया ऊंगली उठायेगी! भगवान कृष्ण ने कहा, आप और बेटी! कटिमेखला ब्रह्मचर्य आप का है! आप को बेटी कौन है जो कुंआरी है? बोले, मेरी बुद्धिरूपी बेटी कुंआरी है, कहीं ईधर-उधर ब्याह न ले इसीलिए हे गोविंद! मेरी बुद्धि तेरे चरणों में समर्पित हो।

हृदयँ भगति मति सारँगपानी ।
अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ ।।

'रामचरित मानस' की अवधपुरी का वर्णन इतना ही है यहां। फिर 'उत्तरकांड' में रामराज्य की बेला में आप को उसका वर्णन मिलेगा। लेकिन थोड़ी वाल्मीकि की अयोध्या देख लो! वाल्मीकि का दर्शन करता हूं तो मुझे अकेले-अकेले मौज आती है; क्या वाल्मीकिजी ने अयोध्या चित्रित की है, साहब! ये राज्य चलानेवाले लोगों को नगर आयोजन करना है तो भी, एक साधु के नाते प्रार्थना करता हूं कि एक बार वाल्मीकि की अयोध्या का अभ्यास कर लो। आज भी प्रासंगिक है। राजमार्ग पर वृक्षारोपण दोनों जगह है। अट्टालिकायें सुशोभित है। राजमारग पर गंध छिड़के जा रहे है। कहीं नृत्यशाला है, कहीं पाठशाला है, कहीं व्यायामशाला है। कोई कमी नहीं है। अद्‌भुत वर्णन किया है! यहां तुलसी कहते हैं, 'अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ।' और फिर क्या कहते हैं?

कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत ।

कितना प्यारा दांपत्य है! दिव्य दांपत्य महाराज दशरथ का लेकिन एक ग्लानि है, मुझे पुत्र नहीं है। गुरुगृह गए।

वशिष्ठ महाराज ने कहा, 'धैर्य धारण करो, चार पुत्रों के पिता हो जाओगे।' दशरथजी प्रसन्न हो गये। शृंगी को बुलाया और पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवा दिया। प्रसाद लेकर यज्ञपुरुष बाहर आया। वशिष्ठ ने प्रसाद राजा के हाथ में दिया; कहा, बांट दो। आधा प्रसाद दशरथ ने कौशल्याजी को, आधा से आधी खीर कैकेयी को, फिर दो भाग करके सुमित्रा को दोनों रानीओं द्वारा दिलवाया। तीनों रानियां सगर्भा हुई। कुछ काल बीता और प्रभु का प्रगट होने का मंगल अवसर आया। जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि अनुकूल हुआ और राम के जनम की बेला आ गई। जिसका पूरे जगत में निवास है, पूरा जगत का जिसमें निवास है वो परमतत्त्व, इसको भगवान कहो, ईश्वर कहो, परमात्मा कहो, उपनिषद का ब्रह्म कहो, जो कहना चाहो वो परमतत्त्व माँ कौशल्या के प्रासाद में प्रगट हुआ। तेज छाने लगा! परमात्मा चतुर्भुजरूप में माँ कौसल्या के प्रासाद में प्रगट हुए। अद्‌भुत रूप माँ ने देखा! संतों से सुना, फिर माँ मुंह फिर लेती है। प्रभु ने पूछा, 'मैं तेरे द्वार आया और तूने मुंह फेर लिया?' बोले, 'महाराज, आप आये बड़ा स्वागत, लेकिन वचन तोड़ गये।' 'मैंने कौन-सा वचन तोड़ा?' 'आप ने हम को कहा था गत जन्म में कि आप के घर मैं मनुष्यरूप में आउंगा, बेटा बनकर आउंगा। आज नर के रूप में नहीं आये हैं, नारायणरूप में आये हैं। बेटा बनकर नहीं आये हैं, बाप बनकर आए हैं।' 'तो?' 'मनुष्य हो जाओ।' भगवान ने चार हाथ के बदले दो हाथ कर दिये। 'प्रभु, आंसू निकले तो पता लगे कि दुनिया को दर्द क्या है? रोओ।' और उसी क्षण माँ के इस परम सुजान शब्दों को सुनकर बालक की तरह रोने लगे माँ कौशल्या के अंक में ठाकुर! रोने की आवाज़ बाहर आने लगी और गोस्वामीजी ने उद्‌घोषणा की-

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी ।
संभ्रम चलि आइ सब रानी ।।

भ्रम के साथ सभी रानियां दौड़ आई है। दशरथजी को ख़बर दी गई, 'महिपति, बधाई हो, आप के घर पुत्र का जनम हुआ है!' पुत्रजन्म की बात कान में आई। पहला अनुभव दशरथजी का है, ब्रह्मानंद। और सोचने लगे कि जिसका नाम सुनने से शुभ हो वो मेरे घर आया? कौन मानेगा? रानियों का भ्रम सच्चा है कि मेरा ब्रह्मानंद सच्चा है? कौन निर्णय करे? इसलिए कहा, गुरु को जल्दी बुलाओ। वो ही निर्णय कर सकेगा कि ये ब्रह्म है कि भ्रम है। कृपालु गुरु विप्रों के संग आ गये और कहा कि राजन्, ये भ्रम नहीं है, ब्रह्म आज पुत्र बनकर आया है। ब्रह्मानंद गया, परमानंद आ गया। परमानंद, ब्रह्मानंद के उपर की अवस्था है। इसलिए वहां आख़िरी शब्द युज्ञ किया है, 'परम।' परमानंद में राजा भर गये। और अयोध्या में रामजन्म की बधाईयां और उत्सव का आरंभ हुआ। इस व्यासपीठ से आप सभी को भी रामजनम की बधाई हो।

धार्मिक जीवन बिलग है, आध्यात्मिक जीवन बिलग है। धार्मिक जीवन अपने पूर्वजों अथवा पूर्वाचार्यों के दृष्टिकोण पर एक ही दिशा में चलता है। अध्यात्म जीवन सर्व को छूता है। दशरथजी अध्यात्म की तुलना में धार्मिक व्यक्ति ज्यादा है। राम पूर्णत: अध्यात्म है। अध्यात्म सब को छूएगा। उसमें ध्यान का भी स्वीकार, पूजा का भी स्वीकार, अर्चा का भी स्वीकार; आरती का भी स्वीकार, धूप का भी स्वीकार; साकार का भी स्वीकार, निराकार का भी स्वीकार; मंदिर का भी स्वीकार, मस्जिद का भी स्वीकार, गुरुद्धारा का भी स्वीकार।

- उपासना सांप्रदायिक हो सकती है, भजन कभी सांप्रदायिक नहीं हो सकता।
- अखंड सुमिरन का नाम है भजन।
- भक्ति ये विधा है भजन के महल में प्रवेश करने की।
- रामकथा खराब लेख को बदल देती है।
- सत्य लिया जाय, प्रेम दिया जाय, करुणा में जीया जाय।
- धर्म परम स्वातंत्र्य का नाम है, बंधन का नाम धर्म नहीं है।
- धर्म का कभी विवाद नहीं होना चाहिए, धर्मसंवाद होना चाहिए।
- धर्मधुरंधरता का एक अपना प्रताप होता है, एक अपना प्रभाव होता है।
- धार्मिकता का लेबल नहीं होता है, एक लेवल होता है।
- ज्ञान किसी कोम की बपौती नहीं है, ये गुरुदत्त संपदा है।
- व्यक्ति और राष्ट्र बाहर से स्वच्छ हो, भीतर से पवित्र हो।
- आत्मा के अनुकूल प्रवृत्ति नीति है ; आत्मा के प्रतिकूल प्रवृत्ति अनीति है।
- आप वेश बदल सकते हैं, वृत्ति और वाणी नहीं बदल सकते।
- बोलनेवाले में विवेक होना चाहिए, सुननेवाले में विश्वास होना चाहिए।
- आदमी जितना ज्यादा जागे इतने ज्यादा विघ्न आते हैं।
- अधैर्य आदमी को अंधा कर देता है।
- गुणाभिमान आदमी का पतन करता है।
- प्रेम में भय नहीं लगता, मोह ही भय देता है।
- दु:ख से मुक्त होना है तो सुख से भी मुक्त होना पड़ेगा।
- संशय जब परेशान करे तब विश्वास का साथ लो।

हम सब में एक दशरथ है,
हम सब में एक दशानन है

'रामचरित मानसं' के आधार पर दशरथजी के दर्शन हेतु हम यहां संवाद कर रहे हैं। गोस्वामीजी 'दोहावली रामायण' में दशरथजी के बारे में कहते हैं-

दसरथ नाम सुकामतरु फलइ सकल कल्यान ।
धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान ।।

क्या है दशरथ? दशरथ तो केन्द्र में है। हमें कोई यदि इससे दर्शन प्राप्त हो जाय। मैं आप से पूछुं कि आप के हाथ में रेखायें है? तो जवाब हां मे ही मिलेगा न, है। हाथ में रेखायें है। बच्चा हो, कुमार हो, प्रौढ़ हो, बूढ़ा हो, कुछ न कुछ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रेखायें भाल में भी होती है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, रेखायें जरा प्रत्यक्ष होने लगती है, लेकिन भाल में भी रेखायें है। ज्योतिषशास्त्र का ऐसा मानना है। यद्यपि मेरा ये विषय नहीं; मेरा इसमें रस भी नहीं, मेरी रुचि भी बिलकुल नहीं। मैं इस शास्त्र को प्रणाम करता हूं लेकिन इससे अभ्यास की मेरी कोई रुचि नहीं है। मैं भरोसे का आदमी हूं। लेकिन ये शास्त्र है। और 'मानस' के आधार पर जब सभी दर्शन पेश किया जा रहा है तब मुझे 'मानस' की बात तो माननी पड़ेगी क्योंकि यही तो मेरा श्वास है। वहां तो लिखा है-

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख ।।

नारद ने पार्वती के हाथ को देखकर कहा कि बेटी का भविष्य ऐसा है। ऐसा पति मिलेगा, ऐसा, ऐसा, क्योंकि आप की बेटी के हाथ में ऐसी रेखायें है। इसका मतलब पक्का हो गया कि हस्तरेखा का एक विज्ञान है। ठीक है?

बिधि के अंक लिखे निज भाला ।

'मानस' में लिखा है कि विधाता ने आदमी के भाल में लेख लिखे हैं। वशिष्ठजी भी कहते हैं-

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।

यहां नारद ने भी कहा कि-

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ।।

आदि-आदि। उसको कोई मिटा नहीं सकते। तो हाथ की रेखायें, भाल की रेखायें सब के पास है। ठीक है? है, लेकिन पहचान नहीं है। हम सब में ब्रह्म है, पहचान नहीं है; और पहचान करानेवाला कोई नारद चाहिए, कोई वशिष्ठ चाहिए, कोई बुद्धपुरुष चाहिए। ये मैं सरल दृष्टांत 'मानस' के आधार पर इसीलिए कह रहा हूं कि जितनी रेखायें है लेकिन पहचान नहीं है, वैसे ही ये जो भी चर्चा हो रही है वो हम में है, पहचान नहीं है। भगवत्कथा मुझे और आप को पहचान कराने का माध्यम है।

मुझे एक प्रश्न पूछा है कि 'वक्ता बोलता है, श्रोता सुनता है, तो क्या होता है?' सीधा-सादा जवाब दूं? वक्ता को गरमी होती है, श्रोता को ठंडक होती है! है ना? मेरा एक युवान आज ही पूछ रहा था, 'बापू, आप हर जगह ये कुर्ता ही पहनते हैं? ठंडी में भी कुर्ता ही पहनते हैं? इस हाल में भी हम को कोट पहनकर आना पड़ता है!' मैंने तो बेटा, कैलास में भी यही पहना है। इसका मतलब ओर कुछ नहीं पहना ऐसा नहीं, फिर ठंडी लगे तो शरीर रखना है तो स्वेटर पहन भी लेता हूं। लेकिन जहां तक संभव है कुर्ता ही पहनता हूं। क्योंकि बोलने की एक गरमी होती है। इसीलिए आप की मात्रा में मुझे शायद गरम कपड़ें जरूर न पड़े। और आप को दुगुना! क्योंकि एक तो ए.सी. और कथा सुनने में ठंडक होती है, शीतलता आती है। मैं ये जो युवान, युवानी से भी कम उम्रवाले मेरी कथा में आते हैं ये मेरे लिशनर नहीं है, ये मेरे ओब्ज़र्वर है। और मैं स्वागत करता हूं। केवल लिशन न किया जाय, ओब्ज़र्व भी किया जाय तो मुझे अच्छा लगता है। हम और आप जो देखना सीख जाय, दर्शन सीख जाय तो ये पूरी दुनिया एक किताब है। एक सद्ग्रंथ है। पूरा अस्तित्व शास्त्र है। उसको होले-होले पढ़िये। फूल खिलता है तो सुनने की जरूरत नहीं, देखो। और टागोर ने इस तरह देखा, उसने एक पंक्ति लिख दी कि 'फूल की-कमल की सभी पंखुरियां पूर्ण मात्रा में खुल जाय उसको मैं मोक्ष कहता हूं।'

आज मुझे एक प्रश्न ये भी पूछा है, 'बापू, आप मुक्ति में नहीं मानते, मस्ती में मानते हैं। क्या राज़ है?' मुक्ति उधार है, मस्ती रोकड़ी है। है ना? ये कोई मेरा वाणीविलास तो नहीं है। मैं बहुत कम बोलता हूं, आप के सामने बोलना पड़ता है। मैं यद्यपि बहुत चुप रहता हूं। अब तो थोड़ा बोल भी लेता हूं कोई पूछे तो, बाकी मेरा स्वभाव मौन है। तथागत, क्रिष्नमूर्ति, ओशो, ये सब ने कहा कि यदि किसीका मौन कोई समझ ले तो वाणी उच्चारित करने की जरूरत नहीं है। मौन परमभाषा है।

मैं आप से पूछुं, भक्ति बोलने का विषय है? भक्ति परावाणी है। बोलने की जरूरत नहीं है। 'रामचरित मानस' में चार वाणी का उल्लेख है। गोस्वामीजी कहते हैं-

मन संतोष सुनत कपि बानी ।
भगति प्रताप तेज बल सानी ।।

परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी। परा भक्ति क्या है? परावाणी क्या है? भक्ति क्या है? मुखरता का नाम भक्ति नहीं है। धीरे-धीरे-धीरे गहन मौन का नाम भक्ति है। हनुमानजी बोलते हैं तो जानकीजी कहती है, तेरी वाणी में चारों प्रकार मुझे दिखते हैं, बेटे! तू परावाणी का वक्ता है। पश्यन्ति वाणी का नाम 'रामचरित मानस' में है प्रतापी वाणी। पश्यन्ति का अर्थ है ऐसी प्रतापवाली बानी कि सोये को जगा दे, गिरे हुए को खड़ा कर दे। तीसरा प्रताप तेज वाणी है, मध्यमा। तेज मानी प्रकाश हमें आलोकित करता है, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय:।' ये तीसरे प्रकार की बानी है मध्यमा जो तेज ला दे। हम और आप कोई ऐसे महापुरुष की बानी सुनते हैं ना, सुनकर उसी भाव में घर जाकर कभी सीसे में देखो, आप के चेहरे में आप को तेज मालूम पड़ेगा। और जिस बानी में बल है, जो चिल्लाचिल्लाकर बोलता है, बैखरी है। आदमी को लगे कि बहुत चिल्लाचिल्लाकर बोले तो हमारा सत्य मजबूत होगा!

तो, मेरे कहने का मतलब ये है मेरे भाई-बहन, कि भगवान की कथा हमारे पास जो संपदा है उसकी पहचान कराती है। हम में एक दशरथ है, हम में एक दशानन है। हमारे गांधीनगरवाले साहित्यकार केशुभाई कहते हैं,

मनवा, तुं कृष्ण तुं कंस...

रामकथा के प्रत्येक पात्र हम सब में है। कभी हम में मारीच होता है, कभी जटायु। कभी हम समर्पण की सोचते हैं, कभी अपहरण की सोचते हैं! ये कथा मानी धार्मिक मेलावड़ा मत समझना, साहब! कथा कोई धार्मिक सम्मेलन नहीं है, ये प्रेम-शिबिर है। ये धर्मशाला नहीं है,जीवन को रूपांतरित करने की प्रयोगशाला है। बोलनेवालों को, सुननेवालों को परिवर्तित करती है। करो ओब्ज़र्व। और मैं देखता हूं। मैं भी आप को देखता हूं। मैं बहुत ओब्ज़र्व करता हूं। छोटे-छोटे बच्चों में आजकल जो विचार आ रहे हैं, मैं हैरान हूं कि ये कहां से बच्चों में आया है! तब मुझे लगता है कि उसमें कुछ पड़ा था, पहचान बाकी है। एक नादान चित्त कितना अच्छा सोचने लगता है? फिर से सुनो, ये दुनिया सब से बड़ा सद्ग्रंथ है, उसको होले-होले पढ़िये; उसको दखिये। कितनी चेतनाएं तैयार हो रही है प्रयोगशाला में! अंदाजा पचास साल बाद आयेगा। सौ साल के बाद रिझल्ट आयेगा। इसी भरोसे मैं बोले जा रहा हूं। यही भरोसा मुझे ओर विश्राम दे रहा है।

बाप! तो हम सब में एक दशरथ है, हम सब में एक दशानन है, हम सब में एक विभीषण है, हम सब में एक इन्द्रजित है। पहचान करनी बाकी है, उसकी पहचान कराता है ये सद्गुरु ग्रंथ। तुलसी ने कहा-

सदगुर ग्यान बिराग जोग के ।
बिबुध बैद भव भीम रोग के ।।
सदगुर बैद बचन बिस्वासा ।
संजम यह न बिषय कै आसा ।।

और जब 'सद्गुरु' शब्द का प्रयोग होता है फिर भी किसीको लगे कि सद्गुरु की क्या जरूरत? सद्गुरु कोई व्यक्ति मत समझो। 'सद्' का अर्थ होता है 'सत्', 'सत्य' को गुरु मानो। सब माध्यम हट जाएगा, बात खतम! सत्य ही गुरु है; प्रेम ही गुरु है; करुणा ही गुरु है। तो ये जो ग्रंथ, जो सद्गुरु है अथवा तो कोई भी शास्त्र, ये सद्गुरु है। जो हमारे में है उसकी पहचान कराता है।

दसरथ नाम सुकामतरु फलइ सकल कल्यान ।
धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान ।।

जैसे अष्टसिद्धि, नवनिधि, वैसे 'निधान' कितने? 'निधान' मानी खजाना भी। शास्त्रों ने बिलग-बिलग संख्या बताई है निधान की। कोई कहता है नवनिधान। कहीं आठ निधान की भी चर्चा चली। तुलसीजी भी शास्त्र में 'निधान' की बहुत चर्चा करते हैं। 'गुणनिधान', 'क्रिपानिधान' आदि। लेकिन 'दोहावली रामायण'में तुलसीदासजी कहते हैं, सात निधान है। वो निधान, वो खजाना, वो कोश, वो भंडार साधक को मिलेगा, एक नाम याद रखकर उसका सिमरन करे तो; हम में वो तत्त्व है, उसको पहचाने तो; वो कौन है?

दसरथ नाम सुकामतरु फलइ सकल कल्यान ।

वहां तुलसीजी कहते हैं, दशरथ कल्पतरु का नाम है। वो समस्त कल्याण का परिणाम देता है। हम सब 'राम' 'राम' करते हैं। कभी 'दशरथ'-'दशरथ' किया है? यदि 'दोहावली' पढ़कर कोई एक बार 'दशरथ' कहे तो-

राम राम सब कोई कहे, दसरथ कहे न कोई ।
एक बार दसरथ कहे, तो कोटि जनम फल होई ।।

तो, 'दशरथ' बोलो। क्या है नाम दशरथ? सुकामतरु, कल्पतरु। मनोकामना पूर्ण करनेवाला ये देवतरु है दशरथ। और उसका फल है 'सकल कल्याण।' अब 'समस्त कल्याण' की व्याख्या करे तो खबर नहीं, एक कथा कहनी पड़े! आज मेरे एक श्रोता ने लिखा है कि 'बापू, आपने इतनी बार कहा है कि मुझे इस पर कथा कहनी है, इस पर कथा कहनी है, कब करोगे?' जनम-जनम करते रहेंगे यार! हां!

सो बार जनम लेंगे...

सौ क्या यार? सौ कम है। तो सौ साल क्यों जीये? सौ जनम ही क्यों ले? तेरे यहां व्यवस्था है तो अनगनित जनम लेंगे और हम आते रहेंगे, तूझे गाते रहेंगे। नाझिर देखैया भावनगर का एक मर्हूम शायर, उसकी गुजराती गज़ल है-

हुं हाथने मारा फेलावुं तो तारी खुदाई दूर नथी।
हुं मागुं ने तुं आपी दे ए वात मने मंजूर नथी।
मारे जोवो छे तने पण तारे देखावुं नथी।
आजे करी ले फेंसलो, कां हुं नथी कां तुं नथी!

ये कवि का अभय है; ये क्रिएटर का अभय है; सर्जक का अभय है!

तो, सात निधान तुलसी ने बताये, दशरथ के नाम लेने से मिलेंगे। सात प्रकार के खजाने हैं-

धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान ।।

दशरथ का नाम लेने से आदमी उस कल्पतरु के नीचे रहेगा और उसके मन में ये खजाने की चाह होगी। 'धरनि'; धरती खजाना है। उसको धरती मिलेगी। अब क्या अर्थ करें? हमें पृथ्वीपति होना है दशरथ का नाम ले लेकर? हमें सार्वभौम सम्राट होना है? ये क्या लालच दी गई यहां कि 'धरनि' का खजाना मिलेगा? स्थूल अर्थ मत करिये। ये तुलसीदर्शन है। धरणि का मतलब है 'धैर्य।' धीरज ही खजाना है। 'रामचरित मानस' में लिखा है, धैर्य कहां रखना, अधैर्य कहां रखना। गोस्वामीजी का दर्शन है, प्रेम में कभी धीरज मत रखना। प्रेम अधैर्य का पंथ है। भक्ति में धीरज मत रखो। भजन में धीरज मत रखो। और विवेक में धीरज रखना। ज्ञान में धीरज रखना। ये 'मानस' के अकाट्य सूत्र है। एक ही व्यक्ति 'मानस' का, कुछ समय पहले अधीर है; कुछ समय के बाद धैर्यवान है। जो इन दोनों के राज़ को समझे उसको धर्मधुरंधर कहते हैं। हर जगह धैर्य, हर जगह अधैर्य नहीं चल सकता।

प्रेम में धीरज नहीं। आदमी अधीर हो जाता है प्रेम में। अधीर होना प्रेम का ईश्वरदत्त स्वभाव है। प्रेम दौड़ाएगा और ज्ञान? धैर्य धारण करायेगा। बिलकुल सटीक प्रमाण है 'मानस' का। संत शिरोमणि भरतलालजी अयोध्याजी को लेकर राम-दर्शन के लिए चित्रकूट आ रहे हैं। समय छोटा-लंबा नहीं होता है, आदमी की अवस्था समय को लंबा कर देती है; समय को छोटा कर देती है। आईन्स्टेईन का कालसापेक्षता का जो

बोध था। एक मुकाम आया जहां गुरु, माता, सेना, सचिव सब को रोक दिया गया। और निषादराज गुह और भरत-शत्रुघ्न तीनों निकले। 'अभी तक नहीं मिले! कहीं मेरा नाम सुनकर प्रभु ने वन तो नहीं बदल दिया होगा कि कैकेयी का बेटा आ रहा है, नहीं मुलाकात करनी है! और मेरे कारण बन-बन भटकता ये समाज दु:खी हो रहा है!' इधर सुबह का समय है। संतगण आ चुके हैं। राम-लखन-जानकी चित्रकूट में उदासीनव्रत लिए हैं। कौल-किरात, भील लोग, वनवासी लोग आये, भगवान सचकित है! पूछते हैं, ये वन में विकलता क्यों है? ये इतनी धूल क्यों उड़ रही है? माज़रा क्या है? तब भीलों ने आकर कहा कि महाराज, हमने ऐसा सुना है कि अयोध्या का राजकुमार भरत चतुरंगिनी सेना लेकर आ रहा है। 'भरत!' जो भगवान सचकित थे; क्या हुआ?

सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर ।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ।।

इतने सुंदर मंगलमय बैन भीलों से सुने, मन प्रसन्नता से भर गया, शरीर पुलकित हुआ। और तुलसी मानो देख-देखकर लिख रहे हैं। 'सरद सरोरुह नैन।' शरद ऋतु की सुबह के खिले हुए कमल जैसी प्रभु की आंखों में स्नेह का जल भर आया। दूसरी क्षण भगवान चिंतित हो गये कि भरत का आना क्यों होता होगा? क्या कारण होगा? कई प्रश्न प्रभु के मन में उठे। भगवान के चित्त की सचकित दशा देखकर लक्ष्मणजी से नहीं रहा गया। और लक्ष्मणजी एकदम खड़े होकर कहे कि 'प्रभु, मैं बता दूं, भरत क्यों आ रहा है? विष की बेली को अमृत का फल नहीं आ सकता, प्रभु! भरत के दिल में केवल यदि आप के प्रति प्यार ही होता तो अकेले आता। ये चतुरंगिनी सेना! ये तो युद्ध का निर्णय करके आया है कि अकेले राम को परास्त करे और फिर अयोध्या का निष्कंटक राज भोगा जाय!' लक्ष्मणजी भरत के बारे में बहुत बोल गये हैं यहां! इतना बोल गये, 'मैं सब को समाप्त कर दूंगा; मैं छोडूंगा नहीं!' अब कोई 'भरत को मार दूं', ऐसा बोले तो प्रभु से सहा नहीं गया और बोले लक्ष्मण, तो उसे डांट भी नहीं सकते हैं। करे क्या? लेकिन प्रभु की रीत कोई समझे, सीखे। भगवान ने लक्ष्मण को कहा कि लक्ष्मण, तू बहुत अच्छा बोलता है, भाई। तूने कहा, विषयी जीव को प्रभुता मिलती है, तो मूढ़ता आ ही जाती है। तेरी बात सूत्र के रूप में बहुत प्यारी है। लेकिन एक बात कहूं, भाई?

लखन तुम्हार सपथ पितु आना ।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ।।

कहते-कहते प्रभु की आंख भर आई! और राम बोले, 'लखन, मैं पहली बार बोल रहा हूं भैया, मुझे मेरे लक्ष्मण की कसम, महाराज पिता दशरथजी की आण, सुन ले, इस जगत में पवित्र भाई भरत समान कोई नहीं है। तेरी बात तो सही है, विषयी को मूढ़ता आ जाती है लेकिन तूने जो कहा वो भरत को लागू नहीं पड़ता।'

यहां भरत-शत्रुघ्न और निषादपति तीनों अपने समाज को एक जगह रखकर आ रहे हैं। आश्रम के द्वार तक गये, फिर गिर पड़े! आदमी का पुरुषार्थ इतना ही होता है द्वार तक, मुलाकात तो तब होती है कि अंदरवाला दौड़कर हमें उठायें। हमारे पुरुषार्थ की सीमा होती है। प्रभु तो अंतर्यामी जान गये लेकिन लक्ष्मण का हृदय परिवर्तन हुआ कि नहीं उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इतने में लक्ष्मणजी ने कहा, 'प्रभु, हमारा भरत प्रणाम करता है!' यहां ये पंक्ति आई है -

उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा ।
कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ।।

प्रेम में धैर्य नहीं चलता, साहब! साक्षात् हरि, साक्षात् ब्रह्म! यहां भगवान अधीर होते हैं। परमप्रेम की अवस्था में धीरज नहीं चलती, अधीरता ही धर्म है। अब उसके बाद का प्रसंग देखिये। डूबे जा रहे हैं सब! भरतजी आये; भगवान ने उसको गले से लगा लिया। एक प्रेम समाधि लग गई; किसीको पता नहीं हम कहां है, क्या है! अब जो डूबा जा रहा है तो उसको कैसे निकाले? यहां केवट ने रस्सी फैंकी। मजबूत भारी रस्सी फैंकी। और

डूबते परमप्रेम में अधैर्य आ गया था; सब डूबे जा रहे हैं। कौन आया गुरु?

चले सबेग रामु तेहि काला ।
धीर धरम धुर दीनदयाला ।।

अब राम धीरज रखते हैं। वहां अधीर थे। गुरु विवेक सागर है। जब विवेक और ज्ञान का मामला है तब तुलसी कहते हैं, भगवान धीरज रख रहे हैं। एकदम गये लेकिन धैर्य धारण कर लिया। प्रेम में अधैर्य, विवेक में धैर्य धर्म बन जाता है।

मेरे कहने का मतलब मेरे भाई-बहन, ये सात प्रकार के जो खजाने हैं उसमें धरती एक खजाना है दशरथ के नाम से; मतलब, धैर्य। दशरथ का नाम लेने से 'धाम' प्राप्त होता है। 'धाम' एक खजाना है। 'धाम' का अर्थ है विश्राम। बस, सूक्ष्म अर्थ यही है, धाम मानी विश्राम। वैसे अपना घर हो, घूम-घूमकर हम धाम में पहुंच जाते हैं तो विश्राम। तो यहां विश्राम भी एक हमारे जीवन का खजाना है। 'धन' मानी पैसा। फिर एक बार कहूं, पैसा खराब नहीं है, पैसा खराब नहीं है, पैसा खराब नहीं है। खूब कमाओ। मोरारिबापू बोल रहा है, खूब कमाओ, खूब कमाओ। लेकिन एक साधु की बात मानना, चार हाथों से बांटो। मेरे देश का ऋषि कभी धन कमाने की मना करता ही नहीं। लोभ खराब है। दो हाथ से कमाना, चार हाथ से बांटो। फिर लाओत्सु को याद करूं, सामर्थ्य का सदुपयोग करना। ज्ञान को भी धन कहा है। ज्ञान धन है; विवेक धन है; शील धन है। ये सब संपदा है। दशरथ का नाम लेने से सुकाम तरु फलता है और ये धनरूपी खजाना भी प्राप्त होता है।

दशरथ स्वयं धर्मधुरंधर ही है। सवाल ही नहीं। दशरथ के नाम से, उसके अनुगमन से हम में धर्म चरितार्थ होने लगेगा। फिर 'सुत'; सुत मानी पुत्र, परिवार। संतान हमारा खजाना है। शीलवान संतान हमारा खजाना है। कौन मा-बाप प्रसन्न नहीं होता जिसे शीलवान संतान हो। तो, 'सुत' शब्द का अर्थ है जो शीलवान हो, जो विचारवान हो। छठ्ठा सूत्र 'रूप'; रूप को भी तुलसी ने खजाना कहा है। रूप की आलोचना न करो। मैं बार-बार कहूं। मोह खराब है, प्रेम पाप नहीं है। एक कोयल बोलती है तो क्या सुनने में कोई पाप है? ठाकोरजी की सुंदर प्रतिमा है तो टकटकी लगाये। हां, मोह न हो, इससे सावधान। सातवां खजाना 'सद्गुण।' अच्छे-अच्छे गुण ये खजाना है, ये निधान है, ऐसा 'दोहावली रामायण' में लिखा है।

अब थोड़ा समय है उसमें मैं कथा का क्रम निभा लूं। कल रामजन्म की बधाई और उसका गायन हुआ। आप जानते हैं, कैकेयी ने भी पुत्र को जन्म दिया, सुमित्रा

रामकथा के प्रत्येक पात्र हम सब में है। कभी हम में मारीच होता है, कभी जटायु। कभी हम समर्पण की सोचते हैं, कभी अपहरण की सोचते हैं! ये कथा मानी धार्मिक मेलावड़ा मत समझना, साहब! कथा कोई धार्मिक सम्मेलन नहीं है, ये प्रेम-शिबिर है। ये धर्मशाला नहीं है,जीवन को रूपांतरित करने की प्रयोगशाला है। बोलनेवालों को, सुननेवालों को परिवर्तित करती है। ये दुनिया सब से बड़ा सद्ग्रंथ है, उसको होले-होले पढ़िये; उसको दखिये। कितनी चेतनाएं तैयार हो रही है प्रयोगशाला में! अंदाजा पचास साल बाद आयेगा। सौ साल के बाद रिझल्ट आयेगा। इसी भरोसे में मैं बोले जा रहा हूं। यही भरोसा मुझे ओर विश्राम दे रहा है।

ने दो पुत्रों को जनम दिया। चारों भाईओं का नामकरण का संस्कार का वक्त आया और वशिष्ठ आदि गुरुजनों को बुलाये गये। वशिष्ठजी कौशल्या के नंदन के सिर पर हाथ रखकर बोले, 'जो आनंद का सिंधु है, ये पुत्र सुख की राशि है, इसका नाम मैं राम रखने जा रहा हूं क्योंकि ये बालक का नाम विश्व को विराम देगा, आराम देगा, विश्राम देगा।' राम के बिलकुल मिलती-झूलती सकलों-सुरत, राम जैसा ही वर्ण और स्वभाव भी राम के समान, ऐसा दूसरा बालक कैकेयीनंदन, उसका नामकरण करते हुए वशिष्ठजी ने कहा, 'ये बालक का नाम लेने से विश्व का भरण-पोषण होगा। ये सब को भर देगा। ये शोषण नहीं करेगा, सब का पोषण करेगा।' उनका नाम भरत रखा। उसके बाद सुमित्रा के दो पुत्रों के नाम लक्ष्मण-शत्रुघ्न; लेकिन क्रम तोड़ा गया। तीसरे स्थान पर शत्रुघ्न का नाम रखा गया, 'इस बालक का नाम मैं शत्रुघ्न रखता हूं'; वशिष्ठजी ने कहा, 'इसका नाम लेंगे उसके दिमाग से, दिल से शत्रुता मिट जायेगी, दुश्मनी बिदा होगी। वैरवृत्ति का नाश होगा।' समस्त लक्षण का धाम, राम का अति प्रिय, जगत का आधार, वशिष्ठजी उनका लक्ष्मण नाम रखते हैं। उदार है लक्ष्मणजी, आधार है लक्ष्मणजी।

मैं बार-बार कहता हूं कि 'राम' मंत्र जपनेवालों को चाहिए कि बाकी के तीन नाम का जो पारमार्थिक अर्थ है वो हमारे जीवन में जितनी मात्रा में उतरे इतनी मात्रा में राममंत्र ज्यादा हमें आनंद प्रदान कर सकेगा। 'राम' या तो कोई भी मंत्र जपते हैं उसके लिए दूसरा ये जरूरी है कि रामनाम जपनेवाला समाज का पोषण करे, आडंबर के द्वारा समाज का शोषण न करे। धर्म के नाम से, मंत्रों के नाम से कहीं समाज का शोषण न हो। जो रामनाम जपे उसके दिल में किसीके प्रति शत्रुता न हो, दुश्मनी न हो। और फिर सब का आधार बने, उदार बने।

चारों भाई बड़ें होने लगे। यद्यपि तुलसी की खोज ब्रह्म राम की है। फिर भी मानव के थ्रू उसको ब्रह्म को पाना है। मानव के द्वारा ईश्वर को पाना है, मानव का अनादर करके नहीं; मानव को तुच्छ समझकर नहीं। क्या बच्चा परमात्मा नहीं है, साहब! मैं तो स्पष्ट मानता हूं, जिसको बच्चे में परमात्मा न दिखाई दे उसको मंदिर में परमतत्त्व नहीं दिखता! बच्चे तो हरि है! चारों भाई कुमार हो गये हैं। यज्ञोपवित संस्कार किया। यज्ञोपवित संस्कार के बाद भगवान गुरु के आश्रम में पढ़ने गये। अल्पकाल में विद्या प्राप्त की। विद्या प्राप्त करके घर लौटे। महामुनि ज्ञानी विश्वामित्र आये दशरथजी के पास। राम की मांग की। शुरूआत में तो थोड़ा डगमगाए लेकिन वशिष्ठजी ने संशय तोड़ दिया, ये तो विश्व के लिए आया है; विश्व का मित्र उसको बनने दो। गुरु ने जब ये बात कही तो दशरथजी ने अपने पुत्रों को सौंप दिये।

राम-लक्ष्मण मुनि संग यज्ञरक्षा के लिए निकलते हैं। मुनि को महानिधि प्राप्त हुई। ईश्वर में औदार्य होता है। ईश्वर में सौंदर्य होता है। ईश्वर में माधुर्य होता है। ईश्वर में गांभीर्य भी होता है। ईश्वर में क्या नहीं होता? षड़ेश्वर परमात्मा होता है। जब सुना कि ये ताड़का है, भगवान कुमार राम ने तुरंत एक ही बाण से ताड़का का प्राण हर लिया। अवतारकार्य का श्रीगणेश। विकारों की भूमिका को नष्ट करनी थी तुलसी को। ये मारीच-सुबाहु ताड़का से पैदा होते हैं। भगवान राम ने मारीच-सुबाहु को निर्वाण दिया। मुनि के कहने पर धनुषयज्ञ देखने के लिए वो मिथिला की पदयात्रा करते हैं। रास्ते में अहल्या का उद्धार किया। प्रभु जनकपुर पहुंचते हैं। जनक जैसे विदेहराज जो नामरूप में मिथ्या मानते थे वो राम के रूप में डूब गये! विश्वामित्र ने कहा, 'राजन्, ये वो तत्त्व है जो सब को प्रिय लगता है।' मिथिला में 'सुंदरसदन' नाम के एक भवन में विश्वामित्र आदि संतगणों के साथ राम-लक्ष्मण को निवास करवाया।

ज़िंदगीभर के समाधान पाना हो तो प्रवेश करो 'रामचरित मानस' में

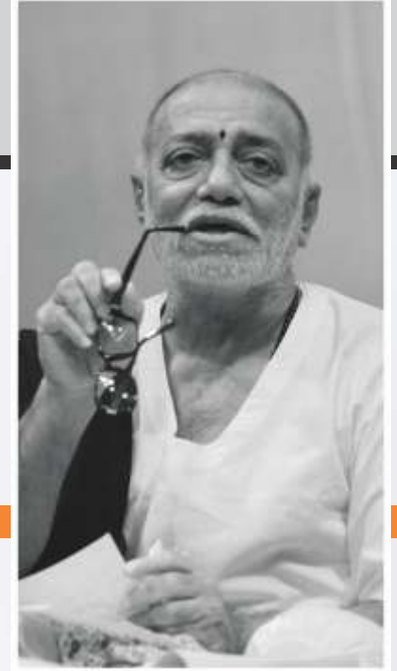

'रामचरित मानस' में दशरथजी का जो व्यक्तित्व है उसका प्रत्येक एंगल से हम दर्शन कर रहे हैं। कुछ ओर दर्शन करें। दशरथजी के बारे में तुलसी कहते हैं-

दसरथ राज न ईति भय, नहिं दुख दुरित दुकाल ।
प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब, सब सुख सदा सुकाल ।।

ये वक्तव्य तुलसीदासजी के एक ग्रंथ 'रामाज्ञा-प्रश्न' से व्यासपीठ ने लिया है। गोस्वामीजी का एक प्रासादिक प्रयास है कि दशरथजी एक प्रजापालक राजा भी है, अतिशय पुत्रप्रेमी पिता भी है। रानिओं मे विशेषकर कैकेयी के प्रति अतिशय मोहित भी है। दशरथजी को 'रामचरित मानस' में वशिष्ठजी ने एक प्रमाणपत्र दिया है कि वो पुन्यपुरुष भी है। दशरथजी एक आदर्श शरणागत शिष्य भी है। 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' इस श्रुतिवाक्य के न्याय से दशरथजी हमें बाध्य करते हैं हर दिशा से उसको देखने को।

दशरथजी अतिशय पुत्रप्रेमी होने के कारण पुत्रवियोग में उसने प्राण तक त्याग दिया। वहां दशरथजी का अत्यंत पुत्रप्रेम मुखर होता है। केवल राम के प्रति ही प्यार है ऐसी बात नहीं है। इतना ही मैं कहूं, वो पुत्रप्रेमी है। उसने कोई ऐसी मांग नहीं की थी कि मुझे राम पुत्र के रूप में मिले। उसने तो अपने जीवन में मांगा था, 'मोरे सुत नाहि।' मुझे पुत्र नहीं है। पुत्र के रूप में राम ही मिले, ये मिले, ये मिले ऐसा कोई चुनाव नहीं है। और एक जगह तो जब रामबनवास की ये नोबत आई और कैकेयी जब एक व्यंग्य बाण फेंकती है दशरथ के दिल पर कि राम को राज देने वक्त आप की खुशी नहीं समा रही थी, भरत के बारे में राज्य मैंने मांगा तो आप बिलकुल रोने लगे? ये भेद आप में कहां से? तब दशरथ का केवल राम प्रति प्रेम है ऐसा एक आक्षेप जो कुछ बौद्धिक लोग कहते हैं! मैं समझकर बोल रहा हूं। ये बिलकुल निराधार सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि दशरथजी का एक वक्तव्य है, कैकेयी, तूझे जो करना सो कर, आइंदा ऐसा कभी मत कहना कि मुझे मेरे पुत्रों में भेद है। और वो कहते हैं-

मोरें भरतु रामु दुइ आँखी ।

मेरे जीवन में भरत और राम मेरी दायीं-बायीं आंखें हैं। अब कैकेयी को समझाने के लिए दशरथजी सपथ ग्रहण करते हैं। एक साक्षी पेश करते हैं कि यदि मैं इस बात में गलत हूं तो मैं साक्षी देता हूं-

सत्य कहउँ करि संकरु साखी ।

शंकर की साक्षी से मैं कहता हूं। एक वस्तु याद रखिये, मैं बार-बार शिव को याद करता हूं। मेरी आत्मा शिव को पुकारती है। जनकराज भी शिव उपासक है, दशरथ भी शिव उपासक है। इन दोनों महाराज के समान विश्व में किसीने शिव की आराधना नहीं की। और इनके समान शिव-आराधना का फल भी विश्व में किसीने नहीं पाया। शिव को भूलना मत, राम-कृष्ण की भक्ति यदि सिद्ध करनी है। यद्यपि जनक निराकारवादी है; जनक ब्रह्मवादी है। और शंकर कोई आकार थोड़ा है?

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं।
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।

ये ॐकाररूप हैं; ॐकार निराकार है। शिव, शिव है; शिव, शिव है; शिव, शिव है। कथा सुनो तो गोद में शंकर को रखकर सुनना। बोलनेवाले में विवेक होना चाहिए, सुननेवाले में विश्वास होना चाहिए। ज़िंदगीभर के समाधान पाना हो तो मैं निमंत्रित करता हूं, प्रवेश करो 'रामचरित मानस' में, किसी बुद्धपुरुष की उंगली पकड़कर। अलमारीवाला 'रामचरित मानस' इतना काम नहीं कर देगा! सोचो, मुझे तो कभी-कभी लगता है कि 'रामचरित मानस' में जितनी समस्याएं आती है वो प्रत्येक मानवी के जीवन की समस्याओं का प्रतिबिंब है। आप को क्यों रामकथा अच्छी लगती है? आप व्यस्त लोग है। कोई आर्थिक क्षेत्र में व्यस्त है, कोई बौद्धिक क्षेत्र में व्यस्त है। आप क्यों कथा सुनते हो मेरे जैसे एक अनपढ़ से! जो तीन बार मैट्रिक में फेईल ओलरेडी हो चुका है! क्यों ये युवान लोग कथा सुनते हैं? उनको तो पार्टी चाहिए, मेहफ़िल चाहिए! रोज नई कार चाहिए! ये कोई बुरी बात नहीं है। लेकिन इन प्रपंचों के बीच कथा में प्रेम क्यों? क्यों? क्यों? इसीलिए कि कहीं से 'मानस' का मर्म यदि मुझे और आप को मिल जाय तो पता लगता है कि समस्या आई थी इससे पहले समाधान हाज़िर था। आंख नहीं खुली थी। फिर एक बार कल का निवेदन याद रखिए मेरे श्रावक भाई-बहन कि हस्तरेखाएं हाथ में है, लेकिन उसकी पहचान नहीं है।

कथा कितनी दृष्टि से सुनी जाती है। मुझे आज भी एक श्रोता का प्रश्न था कि बापू, कथा में हम को निंद आती है! मैंने स्वीकार किया है कि कथा में निंद आये तो भी कथा में आओ। और आदमी के पास जो होता है वो कथा में लेकर आते हैं! सुनिये मेरे भाई-बहन, शरीर में बैठकर कथा सुनोगे तो निंद आयेगी ही। ये बुरा नहीं है। आलोचना नहीं है क्योंकि हमारा स्तर बदला नहीं है। हम दूसरे कमरे में भी प्रवेश नहीं कर पायें है! लेकिन होगा तो यहीं से ही जाना। अच्छा है कि अब तो कोई सोता नहीं कथा में वर्ना तो मैंने चालीस-पचास साल पहले जो कथा कही है उसमें तो दश-पंद्रह लोग थे उसमें दश तो सोते थे! ये अतिशयोक्ति अलंकार नहीं है। आप कहेंगे पंद्रह में दश सोते थे तो पांच कौन-कौन जागते थे? एक मैं! एक हार्मोनियमवाला; एक तबलावाला; तीन। एक मंज़ीरावाला; चार। और उस समय मैं किसी न किसी एक के पास 'रामायण' का पाठ करवा लेता था, वो पांचवां। पांच जागते थे! और पांच लोग जागते थे उसने बड़ा काम किया जमाने को जगाने का! ये मुझे भूल जाना। वक्ताओं ने बड़ा काम किया है।

शरीर में केन्द्रित होकर कथा सुनने से निंद आयेगी। हम सब विषयी जीव है, शरीर में हम केन्द्रित होते हैं। व्याख्यायें लाख करें लेकिन जीवन का सत्य ठुकराया न जाय! हम शरीरवादी है, अवश्य। सत्संग शरीर से उपर उठायेगा कभी न कभी। कुसंग शरीर में बैठे हुए को भी अधोगामी करेगा, नीचे ले जाएगा, भोग में ले जाएगा। जो आदमी मन में बैठकर कथा सुनेगा उसको

रस मिलेगा। मन का स्वभाव है रस लेना। मन रसग्राही है। मन से सुनने से आप को रस पड़ेगा। कोई ऐसा प्रसंग आयेगा तो आंखें भीगेगी; ऐसी बात आयेगी तो आप की बत्तीस दंतपत्तियां मुस्कुरायेगी। आप साहित्य के नव रस या तो फिर अध्यात्म-जगत के रस में इधर-उधर गोता लगा सकते हो मन से सुनेंगे तो। मन से सुनने से मनोरंजन होगा। और कथा में मनोरंजन की छूट है; मनोरंजन के लिए कथा में एक विशिष्ट जगह है। मेरे गोस्वामीजी ये सब की सीट निश्चित करते हैं। ये आध्यात्मिक बेठक व्यवस्था है। बौद्धिक लोग कहां बैठे? अहंकारवाले को तो छूट ही नहीं, कहीं भी न बैठे, प्लीज़!

'सकल जन रंजनी'; तुलसी कहते हैं, भगवान की कथा मनप्रधान श्रोता को रस देगी, मनोरंजन देगी। शरीरधर्मी को शायद प्रमाद देगी। स्वीकार करो; धीरे-धीरे हम आगे बढ़ेंगे। औषधि कटु है तो फैंक न दे। कटु औषधि ही सही मात्रा में लेने से बीमारी मिटेगी। दूसरी व्यवस्था है बौद्धिकों की कथा सुनने की। वहां बौद्धिक कथा सुनेंगे तो समझ पायेंगे और बाद में बुद्धि कुबूल करेगी। चित्त से सुननेवाले श्रोता कथा को जीवन में उतार देते हैं। जीवन के हर मोड़ पर कथा उसको रोकेगी, टोकेगी, पुश करेगी। और अहंकार से सुननेवालों को कथा दुआ करती है, 'माफ करना, मैं तूझे कुछ नहीं दे पाया!' भगवान की कथा क्यों सुनते हैं लोग? क्योंकि एक पड़ाव ऐसा आता है जीवन में तब पता लगता है कि समस्या आई इससे पहले समाधान मौजूद था। मैं चुक गया; कोई बुद्ध की उंगली मुझे न मिली! मेरे मन के तर्कों ने, बुद्धि की व्यभिचारिता ने, मेरे चित्त की विक्षिप्त अवस्था ने या तो मेरे अहंकार के कारण किसी सद्गुरु को कुबूल नहीं कर पाया! और मुझे समाधान हाज़िर है वो दिखाई नहीं दिया।

'सुन्दरकांड' का प्रसंग है। श्री हनुमानजी अशोकवाटिका में आये। अशोकवृक्ष की तरुपल्लव के झुंड में बैठ गये। उसी समय रावण वहां आया। क्या मतलब? रावण है समस्या; हनुमान है समाधान। जीवन के बाग में समस्यायें आती है इससे पहले कोई सद्गुरु समाधानी रूप लेकर हमारे सिर पर ओलरेडी बैठा होता है। अस्तित्व को, अस्तित्व के सर्जक को ये अधिकार नहीं है कि समाधान हाज़िर न करे और समस्या ही देता रहे। अस्तित्व का नियम ये कहता है कि जल की पहले व्यवस्था कर दी जाती है, बाद में ही प्यास दी जाती है। जो परमात्मा पहले जल पैदा न करें और प्यास दे तो परमात्मा बेईमान है। और देखो, उपर समाधान है और जानकी कितनी रो रही है? स्वयं समाधान को पीड़ा हुई कि मैं हाज़िर हूं और ये दु:खी है? जानकी तो जगदंबा है, पराम्बा है। लेकिन माँ जानकी की तरह तुम अपनी दीनता और अपने दु:ख-दर्द ही गाते रहोगे तो समाधान का अनुभव नहीं कर पाओगे! समाधान ओलरेडी आप के उपर है।

मुझे आज एक चिठ्ठी किसीने लिखी है, बेंगोली माताजी कोई सुन रही है वो कहती है कि 'पल-पल में जीने का मतलब क्या है?' आप के पास सिक्का हो एक रुपये का तो दो मुझे, आप को ये पल-पल में कैसे जीना वो दिखाना है। अब ये रुपया है उसको मैं उछालूं और नीचे गिरे तो जो साईड दब जाये वो भूतकाल है। जो दिखती बंद हो गई, अतीत, पास्ट। और जो मुझे अब दिखाई देता है उपर वो फ्यूचर है। दिखता है, ये भविष्य है। लेकिन जैसे उछलते हुए सिक्के की तरह बीच में नाच लेना वो पल-पल में जीना है। जीवन दो पहलू से सटा हुआ है। गिरा वो भूतकाल, उपर दिख रहा वो भविष्य। लेकिन असंग होकर बीच में जिसने एक पल नाच लिया वो ही जीवन है, बेंगोली बहन! पल-पल जीने का नाम नर्तन है, गायन है, मुस्कुराना है। धर्म ने आदमी को मुस्कुराना बंद कर दिया! और यहां सभी अवतार मुस्कुराते हैं। हर अवतार नृत्य करते हैं। यहां मीरां नाचती है। यहां मेरा हनुमान

नाचता है। छोड़ो, दूर क्यों जाते हो, यहां गौरांग चैतन्य नाचता है। जो धर्म अपनी पूरी की पूरी पहचान लिये जगत को मार्गदर्शन करता है उसकी बात मैं नहीं करता हूं, तथाकथित धर्म ने आदमी का नर्तन छीन लिया है! आदमी की मुस्कुराहट छीन ली है!

तो, दशरथजी बड़े पुत्रप्रेमी है। वो ही दशरथजी एक विशेष पत्नी में मोहित है। मुझे कोई बताये 'रामायण' का अन्वेषण करके ओर 'रामायण' में खोजकर भी मुझे बताये, जरूर मैं सत्य का स्वीकार करनेवाला आदमी हूं; मेरी सभी खिडकियां खूली रखता हूं, जहां से अच्छी हवा आये। दशरथजी में आप कहीं भी लोभ नहीं पाओगे। और दशरथजी में अक्सर जहां तक मेरी निगाहें गई है, क्रोध नहीं पाओगे। कोपभवन में तो जाना पड़ा! मजबूरी है; क्रोध नहीं है। दशरथजी में कामप्रभाव जरूर है। कामप्रभाव ने उसको तो गिरा दिया। पत्नी में खास करके कैकेयी पर मोह भी है। वो ही दशरथ प्रजापालक है।

दसरथ राज न ईति भय ।

दशरथ के राज्य में इति भीति नहीं है। किसीके जीवन में दुःख नहीं है। आप को मैं ये कैसे समझाउं और आप को अच्छा नहीं लगेगा; सही में दुःख से मुक्त होना है तो पहली शर्त है सुख से मुक्त होना। सिक्के के दो पहलू है। ये सटे हुए है, सापेक्ष है। इसीलिए तो दशरथजी को एक बार बोध देते हुए भी कहा गया-

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं ।
दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ।।

सुख में हर्षित हो जाये, दुःख में बिलख जाये उसको अच्छा नहीं कहते; दोनों में सम रहे। और जहां दुःख

गया, सुख आया ऐसी बात शास्त्रों में पढ़ो वो दुःख-सुखवाला द्वंद्व नहीं है। वो सुख भीतरी परमानंद का नाम है। सुख आप चाहते हैं तो दुःख का स्वीकार करो। अब ऐसी कथा किसको अच्छी लगे? सीधी-सी बात है। लेकिन है, है। मुझे ऐसी समझ गुरुकृपा से आई है साहब, मेरा परिवार हो आप इसीलिए मैं परिवार में बैठकर बोल रहा हूं। मुझे लगता है सुख-दुःख के पलड़ें दोनों समान ही रहे हैं कायम। कभी दुःख ज्यादा, कभी सुख ज्यादा, ये तो हमारे चालाक मन की चेष्टा है। बड़ा फरैबी है मन! वो धोखा देता है। दुःख से मुक्त होना है तो सुख से भी मुक्त होना पड़ेगा। ये बिलकुल सापेक्ष है। क्या करेंगे? हमारे नरसिंह मेहता तक चले जाओ ना-

सुखदुःख मनमां न आणीए, घट साथे रे घडियां;
टाळ्यां ते कोईनां नव टळे, रघुनाथनां जडियां।

तो, मेरे भाई-बहन, जब गोस्वामीजी कहते हैं कि दशरथ के राज्य में, 'ईति' का भय नहीं था और न दुःख था। दूसरा शब्द है 'दुरित।' दशरथ के राज्य में कहीं दुरित नहीं था। हमारे जीवनरूपी राज्य में कहीं दुरित-दुःख सम हो जाय अथवा तो जो खुशियां है उसको हम सुख न माने, आनंद समझने लगे अनुभव में और कोई दुरित न बचे। बहुत मुश्किल है! लोग कहे कि मेरे जीवन से गरीबी हटे। अच्छा, हटनी चाहिए। लेकिन आप ये भी तो कहो, मेरे जीवन से कुसंग हटे, दुर्गुण हटे। मेरे जीवन से दुरित हटे। हम चाहते हैं कि हमें बी.एम.डबल्यु. मिले। ये चाह का मैं सन्मान करता हूं। मैं कोई वैभव का विरोधी आदमी नहीं हूं। ये वैभव का विरोध करते रहे ये तोता रटन है! ये मोह का एक बिलग प्रकार का परिचय है। मोह की व्याख्या क्या करेंगे मेरे भाई-बहन? वैभव की आलोचना क्यों करे? जीना वैभव में! सोचना वैभव के बारे में! व्याख्यायें वैराग की! इससे बड़ा धौखा क्या हो सकता है? लेकिन तथाकथित लोगों ने यही किया! मुझे मासूम गाज़ियाबादीसाहब का शे'र याद आ रहा है-

उसे किसने इज़ाज़त दी गुलों से बात करने की?
सलीका तक नहीं जिसको चमन में पांव रखने का!

हमारे जीवनरूपी राज्य में दुरित न हो। यदि है तो ग्लानि भी मत करो। अपने आप को कोसो मत कि मैं पापी हूं, पापी हूं! प्रयत्न करो। अच्छा-बुरा क्या है, खुद पहचान करो। धीरे-धीरे हो सकता है ये। विशेष आनंद आयेगा जीवन में।

दसरथ राज न ईति भय, नहिं दुख दुरित दुकाल ।

दशरथ के राज्य में दुष्काल नहीं है; अकाल नहीं पड़ता। दशरथ तो ब्रह्म के पिता है, साहब! हमारे राजाशाही के युग में भी कोई अच्छा राजा था, तो दुकाल नहीं पड़ते थे साहब! होता था तो भी अच्छे राजाओं के कारण बारिश होने लगती थी! बाप, दशरथ के राज्य में न दुरित है, न दुकाल है। मुझे यहां दुकाल का अर्थ लगता है, दशरथ के जीवन में दुकाल नहीं था मतलब, भीगा जीवन था, स्नेहभूत जीवन था, भावमय जीवन था। हराभरा वन ये जीवन। आप कभी 'रामचरित मानस' में बन की गिनती करो। कितने बन है 'मानस' में, खोजो। जीवन के बहुत रहस्य खुलेंगे। तुलसीदासजी 'वन' शब्द का भरपूर प्रयोग करते हैं 'मानस' में। एक तो कहते हैं, 'संसय बिपिन।' 'मोह' वन है; 'स्नेह' वन है। सुग्रीव का एक वन है 'मधुवन।' रावण का वन है 'अशोकवन।' 'दंडकवन।' सब की आध्यात्मिक व्याख्यायें है।

'मोहवन' उसको कहते हैं कि अभी मैं तोते की बात करता था कि वोही अनुभव बार-बार होता है कि रस नहीं है फिर भी चोंचें मारते रहना! अनुभव होते भी बार-बार रिपिट करना उसको मोह कहते हैं। कई लोगों की अर्थियां देखते है! ये मौत आएगी ही। डराने की बात नहीं है लेकिन एक सावधानी तो आनी चाहिए कि मैं स्मरण कर लूं। मरण क्या करेगा मेरा! 'रामचरित मानस' के संतों ने कहा कि मोहरूपी जंगल में एक राजा भुलावे में पड़ा, उस राजा का नाम था प्रतापभानु। और मोहरूपी

वन में सच्चा संत नहीं मिलता, कपटमुनि ही मिल जाता है! प्रलोभन, प्रलोभन! 'रामचरित मानस' का एक दूसरा जंगल है 'संशय।' संशयवन का नाम है दंडकारण्य, जिसमें सती भूली पड़ी है। 'मानस' की सती, उसको संशय हुआ कि राम ब्रह्म है कि मानव है? संशय जब परेशान करे तब विश्वास का साथ लो। सती तो इतनी बौद्धिक अभिमान में निकली कि विश्वास को बिठा रखा और खुद पहुंच गई! उसमें मौत के सिवा कुछ नहीं आता। 'संशयात्मा विनश्यति।' अद्‌भुत वन है 'रामायण' में-

रामकथा मन्दाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।।

चित्रकूट को तुलसीदासजी ने स्नेह का वन बताया है।

दशरथ के राज में अकाल नहीं थे, प्रेम के आंसू थे; भाव का भीगा वन था। हमारा जीवन भी दाशरथीजीवन बन सकता है, यदि भाव बरकरार रहे। दशरथ के राज्य में प्रजा प्रमुदित थी और सब लोग प्रसन्न रहते थे, आनंद में रहते थे। हमारे इस दाशरथी देहरूपी राज्य में हमारी प्रजा क्या है? समस्त इन्द्रियगण हमारी जनता है, हमारी प्रजा है। इन्द्रियां प्रसन्न होनी चाहिए। हम को सिखाया इन्द्रियों का दमन करो, दहन करो, तो हरि मिले! मेरे भाई-बहन, इन्द्रियों का दमन भी नहीं, इन्द्रियों का दहन भी नहीं, इन्द्रियों से समझौता। राजा-प्रजा एक हो जाये। जीवात्मा आंखों को समझा दे कि अच्छा देख, शुभ देख। 'भागवतजी' ने दीक्षित की इन्द्रियों ने, 'श्रवणौ कथायां', हे प्रभु, मेरे कान तेरी कथा सुने। मेरी आंख कोई भी रूप देखूं तो उसमें हरि की झलक दिखें। मैं जो भी भोजन करूं मानो परमात्मा से मिला प्रसाद हो।

'वाणी गुणानुकथने श्रवणौ यां कथानां...'

मेरे हाथ दुनिया की सेवा करे, किसीको दान दूं, किसीको थामूं, किसीको अच्छी सलाह दूं, ये मेरी प्रक्रिया पूजा बन जाये।

पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ।।

-जगद्‌गुरु शंकराचार्य।

हे साधो, तू संसार में सम्यक्‌रूप में आनंद से जीये, सावधान होकर जीये, ये तेरी पूजा है। तू तेरे दफ्तर जाये वो तेरी परमात्मा की परिकम्मा है। जगद्‌गुरु शंकर ही कह सकता है! मैं जो-जो करूं, तेरी आराधना बने।

तो, बिलग-बिलग एंगल से हम दशरथजी का दर्शन कर रहे हैं संवाद के रूप में। थोड़ा कथा का क्रम ले लूं। कल भगवान राम-लक्ष्मण ने विश्वामित्र के संग मिथिला में 'सुंदर सदन' में विश्राम किया। सायंकाल को भगवान, लक्ष्मण को लेकर गुरुआज्ञा प्राप्त करके मिथिला नगरदर्शन के लिए गये। सब ज्ञानी गुणवंत है। पूरी मिथिला को नाम और रूप की दीक्षा देकर भगवान लौटे। सायंकाल की संध्या-पूजा वो सब संपन्न किया।

दूसरे दिन सुबह गुरुआज्ञा लेकर भगवान राम और लक्ष्मण गुरु की पूजा के लिए पुष्प चुनने के लिए जनक की वाटिका में जाते हैं। जानकीजी बाग में आती हैं। सखी ने बाग देखते-देखते ठाकुर के दर्शन किये। सखी दौड़ी, मंदिर में गई और जानकी से कहा कि मूर्ति यहां से कहीं जानेवाली नहीं है! एक मंगलमूर्ति आई है उसको देख ले। और जानकीजी उस सखी को आगे करती है। गुरु कौन? जिसने हरि को देखा है। और फिर शिष्य को निमंत्रित करे कि चल, मैंने देखा है, तूझे दिखा दूं। लेकिन हम कितने भी बड़े क्यों न हो, गुरु के पीछे चलना पड़ता है। आगे वो सखी, पीछे जानकी। इधर राम आये, इधर से जानकी आई। एक-दूसरे आमने-सामने हुए। गुरु दूर हो गया। गुरु की भूमिका खत्म हो गई। एक शिष्य को दीदार कराकर दीवार हट जाय! हमारे गुरु तो दीवार बनकर बैठे हैं! लेकिन मर्यादा तो देखो! हमारी जानकी ने नेत्र के द्वार से ठाकुर को हृदय के कमरे में बिठाकर आंखें बंद कर दी।

इधर भगवान रामजी ने चित्त की दीवार पर जानकी का चित्र अंकित कर दिया। क्या मर्यादा से एक दूसरे के दिल में पहुंच गये!

राम पीछे है, सीयाजू आगे निकल गई। मन मानता नहीं; देखने को जी करता है, तो सीयाजू क्या करती है? कोई झरणा बह रहा था बाग में तो उसको छलांग लेते हुए पीछे देख लेती है। फिर इधर हिरन कूदा तो हिरन को देखने के बहाने राम को देख लेती है। कोई शाखा को हटाने के बहाने देख लेती है। ईश्वर को देखने के ये सभी बहानें है। कभी वनस्पति को देखकर हरि देख लो; कहीं बहते हुए झरणें में हरि देख लो। इसीलिए भारतीय तत्त्वज्ञान ने पांचों तत्त्वों में सजीवारोपण कर दिया। पृथ्वी को माँ कह दी। आसमां को इतना आदर दे दिया। पवन को देवता बना दिया। जल को वरुण देवता बना दिया। अग्नि को ऋग्वेद में पहले प्रतिष्ठित कर दिया। सभी अस्तित्व के पांचभौतिक तत्त्वों में हमने सजीवारोपण कर दिया है। यद्यपि इनकी करणी जड़ है। लेकिन भारतीय तत्त्वज्ञान ने जान डाल दी है उसमें। तो, सीयाजू इस बहाने राम को देखते-देखते 'गई भवानी भवन बहोरी।' फिर से पार्वती के मंदिर में आई। और सखीओं के संग उसने जगदंबा उमा की स्तुति की-

जय जय गिरिबरराज किसोरी।
जय महेस मुख चंद चकोरी।।
जय गजबदन षडानन माता।
जगत जननि दामिनि दुति गाता।।

गौरी की स्तुति की। जानकी के विनय और प्रेम से मूर्तिबोली, मुस्कुराई; मूर्ति ने अपने कंठ की माला प्रसाद के रूप में गिराई। बौद्धिक जगत ये सत्य को कुबूल नहीं कर पायेगा, मैं समझता हूं। लेकिन श्रद्धाजगत का ये सत्य है। शायर कहता है-

प्रेम विराने को गुलशन बना देता है।
प्रेम परिचय को पहचान बना देता है।
औरों की छोड़ो, मैं अपनी कहता हूं,
प्रेम इन्सान को भगवान बना देता है।

अपने साथ तो पड़ोसी भी नहीं बोलता! मूर्ति तो बड़ी दूर नगरी! पड़ोसी तो दूर, पति-पत्नी एक-दूसरे से नहीं बोलते हैं! मूर्ति कैसे बोलेगी? साहब! मूर्ति बोल सकती है। ये देश की भक्ति खंभ से हरि को प्रगट करती है। जानकी स्तुति करे और भवानी बोले तो आश्चर्य नहीं, वो स्वाभाविक है। सखीओं के संग सीयाजू अपने घर आई। और यहां रामजी पुष्प लेकर गुरु के पास आये। गुरु ने आशीर्वाद दिया, 'तुम दोनों का मनोरथ सुफल हो।'

'सुन्दरकांड' का प्रसंग है। श्री हनुमानजी अशोकवाटिका में आये। अशोकवृक्ष की तरुपल्लव के झुंड में बैठ गये। उसी समय रावण वहां आया। क्या मतलब? रावण है समस्या; हनुमान है समाधान। जीवन के बाग में समस्यायें आती है इससे पहले कोई सद्‌गुरु समाधानी रूप लेकर हमारे सिर पर ओलरेडी बैठा होता है। अस्तित्व का नियम ये कहता है कि जल की पहले व्यवस्था कर दी जाती है, बाद में ही प्यास दी जाती है। और देखो, उपर समाधान है और जानकी कितनी रो रही है? लेकिन माँ जानकी की तरह तुम अपनी दीनता और अपने दुःख-दर्द ही गाते रहोगे तो समाधान का अनुभव नहीं कर पाओगे! समाधान ओलरेडी आप के उपर है।

श्रवण करना एक विज्ञान है

रामपिता दशरथ, जिसका दर्शन हम अपने जीवन के विकास और विश्राम के लिए कर रहे हैं संवाद के रूप में। दशरथजी के लिए रघुकुलगुरु वशिष्ठजी ने एक और प्रमाणपत्र भी दिया है। वहीं से शुरू करूं-

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई ।
पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई ।।

गुरुदेव बहुत प्रसन्नता से बोले, अंदर से बोले कि 'हे राजा, आप पुन्यपुरुष है। और जो पुन्यपुरुष होता है उसके लिए पूरी पृथ्वी सुख से छाई हुई रहती है। आप पुन्यपुरुष है।' अब, हमारे लिए ये एक संशोधन का विषय बन जाता है कि यहां केवल शब्द ऐसे ही बोल दिये हैं? क्योंकि कई बातें शिष्टाचार से बोली जाती है। कई बातें हम जानते हैं फिर भी उसको दु:ख न लगे इसलिए बोली जाती है। कई बातें जिसको हम खुशामत कहते हैं ऐसे बोली जाती है। कई बातें बोलनेवाले को विवेक ही नहीं है ऐसे बोली जाती है। लेकिन यहां गोस्वामीजी कहते हैं, वशिष्ठजी जब बोले तो, 'अति सुखु पाई' बोले हैं। बहुत प्रसन्नता से, गर्व से निकली ये बानी है।

मैं जब मैट्रिक पढ़ता था तब अंग्रेजी सिलेक्शन में टागोर की एक कविता आती थी, तो हमें फ़रजियात वो पोएम कंठस्थ करनी पड़ती थी, उसकी एक पंक्ति मुझे कुछ-कुछ याद है। वहां गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टागोर कहते हैं, 'वेर ध वर्ड्ज़ कम आउट फ्रोम ध डेप्थ ओफ ट्रूथ।' जहां शब्द सत्य की गहराई से प्रगट होता हो।

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई ।
पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई ।।

ये डेप्थ ओफ ट्रूथ है।

कोई आदमी बहुत अच्छा है और हम और आप बोले बिना न रह सके उसके बारे में तब समझना प्रेम काम कर रहा है। क्योंकि हम अपने आप को रोक नहीं पाते। लेकिन जिसके बारे में बोला जाय उस व्यक्ति को भी उस समय बहुत सावधान रहना चाहिए। आप के बिलकुल निजी रिश्तेदारों में शादी है और आप, ख़ास करके बहन लोग मानो पचास लाख रुपये का एक हीरे का हार पहनकर जाय और कोई उसकी सराहना करे कि अद्‌भुत है! यदि उसमें विवेक

है तो वो कहेगी कि ये हार मेरा नहीं है। शादी में आना था तो मेरी देवरानी ने जबरदस्ती दिया है, ये पहनकर जाओ। आप की आंखों को भा गया है, आप बोले बिना नहीं रह सकी और आप ने उसको बहुत-बहुत सराहा भी, लेकिन मुझे पता है कि ये हार मेरा नहीं है, मेरी देवरानी का है। बस, युवान भाई-बहन, हम और आप यही सीखें। हमारे बारे में कोई बहुत दिल से बोले तब भी ध्यान रखने का कि ये हार मेरा नहीं है, ठाकुर का है। ये उसकी दी हुई रेहमत है। वो जो भूल जाएगा तो ये आदमी जो बोले बिना नहीं रह सकता उसको भी अन्याय करेगा और खुद का पतन करेगा! इसीलिए आदमी को सावधान रहना। 'श्रीमद्‌भागवतजी' में श्लोक है-

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिता:।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मन:।।

उद्धवजी के बोल है। गोपीओं की सराहना की है। 'अहो' मानी धन्यवाद; 'यूयं' मानी तुम। तुम धन्य हो। क्यों? क्योंकि आप के जीवन के सभी अर्थ पूर्ण हो गये। 'पूर्णार्था'; आप के सभी फल आप को मिल चुके। क्योंकि आप के पास चार पदार्थ के उपर का एक पदार्थ है जिसको भक्तिमारग पंचम पुरुषार्थ कहते हैं, वो है प्रेमपुरुषार्थ। मेरे युवान भाई-बहन, जिसको प्रेम मिल जाय उसको धरम मिल जाता है। जिसको प्रेम मिल जाय उसका जीवन अर्थपूर्ण और सार्थक हो जाता है। जिसको प्रेम मिल जाय उसके काम की पूर्ति हो जाती है। और जिसको प्रेम मिल जाय उसकी मुठ्ठी में मुक्ति होती है। और प्रेम न मिले तो धर्म कच्चा है; डाबरपानी है। निकला है परमात्मा के वक्ष से ये धर्म; बिलकुल उज्वल, पवित्र लेकिन आकाश के बादल से गिरा पानी और भूमि का संयोग होते ही डाबर हो जाता है, मिट्टी मिलते ही अशुद्ध हो जाता है; वैसे धर्म तो बिलकुल ठाकोरजी के वक्षस्थल से निकला हुआ है। आप के सामने आकर निंदा भी करे तो भी धर्म है लेकिन आप के पीछे बोले तो ये अधर्म है क्योंकि भगवान की पीठ से अधर्म पैदा हुआ है। तो, प्रेम है तो धर्म सफल वर्ना धर्म पवित्र होते हुए भी कुछ ऐसी मलिनता आ गई धर्म में पाखंड, दंभ, फरेब, छल, कपट। कुदरत ने बेइमानी नहीं की है। अल्लाताला ने सब को प्रेम दिया है। सब के घट में प्रेम है। 'प्रेम परमात्मा है।'- जिसस क्राईस्ट। और कबीर कहते हैं-

सब घट मेरा सांईयां, खाली घट नहीं कोई।

प्रेम परमात्मा है, सत्य परमात्मा है, करुणा परमात्मा है। अर्थ कमाओ, मैं दिल से कहता हूं, कमाना चाहिए। लेकिन प्रेम रखो। प्रेम होता तो तुम जिससे अर्थ का सौदा करते हो वहां बेईमानी नहीं कर पाओगे! प्रेम है तो काम भी सफल हो जाएगा। गोपियां स्वयं कहती है, हम जार से कृष्ण की ओर गये हैं! हमारी बुद्धि जार बुद्धि है, कीचड़ है! लेकिन तू तो गंगाजल है ना? हम लोहे हैं, तू तो पारस है ना? हम ने कह दिया, अब तेरी महिमा दिखा!

हमने कह तो दिया हम बुरे लोग है ।

●

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।

शे'र सुनिये-

तेरी पाकीज़गी पे न तोहमत लगे,
हम से दामन बचा हम बुरे लोग है।

अब देखो, कव्वाली में ताली प्रधान है ना! और मैंने क्यों करताल ली? मैं कव्वाली को नरसिंह की करताल के साथ जोड़ना चाहता हूं! मेरी व्यासपीठ का ये सेतुबंध है!

हजो हाथ करताल ने चित्त चानक ।
तळेटी समीपे हजो क्यांक थानक ।
-राजेन्द्र शुक्ल

तळेटी जतां एवुं लाग्या करे छे ।
हजी क्यांक करताल वाग्या करे छे ।
-मनोज खंडेरिया

परवाज़साहब की वो रचना-

मेरा साकी क्या मतवाला! जय सियाराम।
माथे टीका हाथ में माला, जय सियाराम।

ध्यान रखना, ये कुछ शे'र के केन्द्र में कोई व्यक्ति दिखाई दे तो मैं बार-बार कहूं कि ये हीरे का हार देवरानी का है!

कांधे की चादर तो बेशक काली है,
लेकिन चारों खूंट उजाला, जय सियाराम।

सोचो, कोई दिल से प्रशंसा करे तो ये उनका विवेक है, उनका विश्वास है। लेकिन सुननेवालों को जब कोई बहुत प्रशंसा करे तो समझना, दिन खराब गया! क्यों? प्रभु से कहना कि जिन कान से मुझे तेरी बातें सुननी थी वहां मुझे मेरी बातें सुनने को मिल गई!

तो, गोपीजन की सराहना उद्धव कर रहा है। आप हमारी प्रशंसा न करो, गोपीजन कहती है। आप कहते हैं, तुम्हारे समग्र पुरुषार्थ पूरे हो गए; आप गोपीजन समस्त लोक में पूजित हो गई। नहीं, उद्धो! न हम दानी है, न हम जप करते हैं। हम गंवार व्रजवासी है। हमारे पास कोई मंत्र नहीं है। हम योगसाधना से दूर है। ये तो तुम्हारी बड़ाई है कि तू बोल रहा है लेकिन हम जार बुद्धि से कृष्ण के पास जानेवाले लोग है! क्योंकि हमें पता है कि हमारा काम कृष्ण के पास जाते-जाते राम हो जाएगा। हमारा क्रोध कृष्ण के पास जाते-जाते बोध हो जाएगा। और हमारा लोभ कृष्ण के पास जाते-जाते जीवन का क्षोभ बन जाएगा, जीवन को रोकेगा।

उद्धव कहते हैं, 'वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः।' तुम्हारा मन कृष्ण में लग गया, तुम्हारा प्रेम पूर्ण कृष्ण में लग गया, इसीलिए प्रेम के कारण धर्म धन्य हो गया। प्रेम के कारण अर्थ धन्य हो गया। प्रेम के कारण काम धन्य हो गया। प्रेम के कारण मोक्ष धन्य हो गया। ये है पंचम पदारथ प्रेम। मेरा तुलसी तो बिलकुल दो-टूक कहता है,'सोह न राम पेम बिनु ग्यानू।' रामप्रेम के बिना ज्ञान की शोभा नहीं है। जैसे कर्णधार के बिना जहाज की शोभा नहीं है। उद्धव कहे, मैं क्या करूं? मेरे दिल में मैं जो महसूस कर रहा हूं, मैं कहूंगा। मैं कृष्ण से भी कहूंगा कि तुम गोपीजन को जो मान बैठे वो ये नहीं है। तू परमात्मा हो, मुबारक तेरा परमात्मापना, बाकी प्रेम की आत्मा तो गोपीजन है।

यहां वशिष्ठजी दशरथ को प्रमाणपत्र देते हैं तब प्रशंसा नहीं है, सत्य की गहराई से बोल निकले हैं। 'वर्ड्ज़ कम आउट फ्रोम ट्रूथ।' और हमारे गुजराती में कहा है, 'रत आये न बोलिये तो हैयाफाट मरा!' मेघ आये तो इमर्जन्सी डाल लो! दुनिया पर इमर्जन्सी डाल सकते हैं लेकिन मोर को कह सकते हैं कि गहकना मत! वसंत आये, कोई इमर्जन्सी दुनिया में है कि कोकिल को कहे कि कुहुकना मत! फूलों को कोई कह सकता है कि खिलना मत! इमर्जन्सी, दबाव दूसरों पर होता है, प्रकृति के तत्त्वों पर कोई इमर्जन्सी चल नहीं सकती; वो अपनी निजता में खिलते हैं। ये अस्मिता खुद की है।

तो, वशिष्ठजी जब दशरथजी को 'पुन्य पुरुष' कहते हैं तब बहुत सुख से, बड़ी प्रसन्नता के साथ बोल रहे हैं। अब प्रश्न ये होता है कि 'पुन्य पुरुष' किसको कहे? 'रामचरित मानस' के आंगन में भी आप को कितने 'पुरुष' शब्द के शब्द मिलेंगे! किसीको तुलसी 'प्रसिद्धपुरुष' कहते हैं। कभी तुलसी 'पुरुषसिंघ' कहते हैं। किसीको तुलसी कहते हैं, 'पुरुष जुगल बल रूप निधाना।' रूप-बल का निधान पुरुष है। मैं बार-बार एक शब्द युझ करता हूं, 'बुद्धपुरुष।' कोई 'धीरपुरुष', कोई 'वीरपुरुष।' हमारे यहां एक शब्द है 'धर्मपुरुष।' एक शब्द है 'कालपुरुष।'

दशरथजी है 'पुन्यपुरुष।' 'पुन्यश्लोक' दशरथ है। सीधी-सी व्याख्या 'मानस' के आधार पर करके आगे बढ़ूं। 'पुन्यपुरुष' उसको माना जाय जिसके चारों पदारथ सफल हुए हो। अब ध्यान दो, ये चारों पदार्थ की प्राप्ति पुरुषार्थ से भी होती है क्योंकि इनको पुरुषार्थ भी कहा है, फल भी कहा है। लेकिन किसीकी कृपा से भी हो सकता है कि धर्म मिल जाय, अर्थ मिल जाय, काम सध जाय, मुक्ति मुठ्ठी में आ जाय, हो सकता है। तुलसीदासजी का दोहा हम रोज मंगलाचरण में लेते हैं-

बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि ।।

हरिगुण गाने से, निर्मल यश गाने से तुलसी कहते हैं, मुझे चारों मिल गये।

तो बाप, ऐसे ही मिल जाय और कृपा से भी मिल जाय। लेकिन कमाई से मिले, जो आदमी चारों पदार्थ कमाई से प्राप्त करता है उसको 'रामचरित मानस' का अर्थ मुझे यहां 'पुन्यपुरुष' में लगाना है। खास करके दशरथ को केन्द्र में रखकर बोलना है तब जो आदमी कर्म करके धर्म प्राप्त करे; जो आदमी पसीने से अर्थ प्राप्त करे; जो आदमी प्रामाणिक पुरुषार्थ से अपने काम को साध ले; और जो आदमी साधना-कर्म करके मोक्ष के द्वार पर दस्तक दे दे। दशरथजी ऐसे हैं। पूरी पृथ्वी रत्नों से भर जाती है पुन्यपुरुष के लिए। 'मानस' में उसका प्रमाण है इसीलिए मैं कह रहा हूं।

दशरथजी बारात लेकर मिथिला गये हैं। बीच में प्रसंग भी कह दूं ताकि कल की लिंक बन जाय। भगवान राम रात को संध्या-पूजा करके विश्राम करते हैं। दूसरे दिन धनुषयज्ञ का दिन था और विश्वामित्र संग दोनों भाई जनक के दरबार में जाते हैं और क्षण के मध्यभाग में भगवान राम धनुष तोड़ देते हैं। जानकीजी ने जयमाला पहनाई। और आनंदमंगल से मिथिला भर गई। लेकिन परशुराम बाबा पधारे! सब कांप रहे हैं! फिर प्रभु का प्रभुत्व परशुरामजी पहचान गये और परशुरामजी बिदा हो गये। पत्र लेकर दूत अयोध्या आते हैं। वहां राम के पिता दशरथ का एक व्यक्तित्व जो प्रगट होता है, प्रेमाळ पिता के रूप में दूतों के पास।

पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ ।
प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ ।।

जब दूत आए पत्र लेकर तो महाराज दशरथजी ने निकट बिठाये, बिलकुल, 'तुम मेरे राम को मिलकर आते हो? तुमने अपनी ठीक आंखों से देखा है उसको? मैं पक्का करूं। तुमने दूसरे को तो नहीं देखा?' 'विश्वामित्र के साथ है, एक सांवरा है, एक गोरा है।' 'तुमने ठीक से देखा है?' बोले, 'बिलकुल।' 'तुम पहचान गये कि ये राम है? तो स्वभाव बताओ। उसका स्वभाव कैसा है? केवल प्रभाव से मैं नहीं राजी होउंगा। तुम स्वभाव बताओ।' दूतों से ऐसे वार्तालाप हुआ है।

पूरी अयोध्या प्रमुदित हो चुकी है। और जनकपुर के लिए यात्रा शुरू हुई। मागसर शुक्ल पंचमी का दिन निकला राम-जानकी के बिबाह का। गोरज बेला। और भगवान राम दूल्हे के शृंगार में तैयार हैं। साक्षात् कामदेव घोड़ा बना है! जीव शादी के लिए जाता है तो जीव के उपर काम संवार होता है। राम ब्याहने जाते हैं तो काम के उपर राम संवार होते हैं। लगाम अपने हाथ में रखते हैं राघवेन्द्र। एक के बाद एक बिबाह बिधि होने लगी। इतने में वशिष्ठजी ने जनकजी से कहा, 'मिथिलेश, मैंने सुना है कि आप की एक कन्या ओर है अभी।' बोले, 'हां है, ऊर्मिला।' 'और सुना है आप के छोटे भाई जो है कुशध्वज उसकी दो कन्या श्रुतकीर्ति, मांडवी है?' बोले, हां। 'तो जनक आप चाहे तो इसी मंडप में सब की ब्याह कर दें? क्योंकि मेरे तीन राजकुमार भी तो कुंआरे है।' तुरंत तैयारी हो गई। ऊर्मिलाजी लक्ष्मणजी को समर्पित हो गई; मांडवी श्री भरतलालजी को समर्पित हुई और श्रुतकीर्ति श्री शत्रुघ्न महाराज को समर्पित हुई। चारों का एक साथ मंगल संस्कार हुआ है। और चारों पुत्रों को देखकर अवधपति प्रसन्न हो गये और चारों अकेले नहीं है, उसकी दुल्हन भी साथ में है। तुलसी कहते हैं-

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि ।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि ।।

आज लगता है कि राजा ने चारों फल क्रिया सहित प्राप्त कर लिया। कमाई करके पाया इसीलिए वो 'पुन्यपुरुष' है। आशीर्वाद तो है ही लेकिन 'क्रियन्ह।' तो, चार पुरुषार्थ अर्थ,धर्म,काम,मोक्ष। और इन चार की क्रिया क्या? अर्थ की क्रिया क्या? यज्ञक्रिया अर्थ की क्रिया है शास्त्र में। 'रामचरित मानस'इस दृष्टि से समझना पड़ेगा। हमारे शास्त्र कहते हैं, जो यज्ञ करता है उसको अर्थ की प्राप्ति होती है। दूसरा, धर्म। धर्म की क्रिया श्रद्धा है। ये सब शास्त्रीय बचन है। मैं तो सब अपनी अदा से पेश कर रहा हूं, ये कोई जेब से निकाली हुई बात नहीं है। और जब बात आई तो मैं मेरे श्रावकों को कहना चाहूंगा कि श्रद्धा राजसी न हो। वर्ना फल में थोड़ी बाधा आ जाएगी। श्रद्धा तामसी न हो। मैं तो मानता हूं श्रद्धा सात्त्विक भी न हो। लेकिन सात्त्विक श्रद्धा को 'रामायण' ने आदर दिया है, 'सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।'

मैं आप से प्रार्थना करूं, आप कथा सुनो तो बिलकुल श्रद्धा से सुनो; गुणातीत, विशेषणमुक्त श्रद्धा से। रजोगुणी श्रद्धा से जब हम कथा सुनते हैं तब कहा गया कुछ, अपनी रजोगुणीवृत्ति के कारण अर्थ हम दूसरा कर लेंगे! तमोगुणी श्रद्धा से सुनेंगे तो करीब-करीब पूरा सुनेंगे भी नहीं! तमोगुण से ग्रस्त जो लोग हैं वो ऐसा आज भी मानते हैं कि कथा में क्या रखा है? बापू वोही! 'रामायण' वोही! उसको पता नहीं है कि'रामायण' में क्या रखा है नहीं प्यारे! सबकुछ रखा है! तू तेरी तामसता छोड़कर कभी आ तो सही! कथा किसीके लिए अनावश्यक होती ही नहीं, लेकिन सब की अपनी-अपनी रुचि होती है। किसीको जप की बात अच्छी लगे तो कथा में जप की बात आयेगी तो वो पकड़ लेगा। किसीको योग की बात अच्छी लगे तो वो, वो पकड़ लेगा। लेकिन धन्य श्रवण वो है जब गुणातीत श्रवण हो।

दशरथ के साथ एक जुड़ी कथा है, श्रवणकुमार की। श्रवणकुमार था उसके माता-पिता अंध थे। कावड़ में बिठाके उसको यात्रा कराने के लिए वो निकलता है। श्रवण ने श्रवण किया था किसी धार्मिक पुरुष से कि यात्रा करने-कराने का बहुत बड़ा पुन्य है। लेकिन केवल सुना, सोचा नहीं! उसको सोचना चाहिए कि अंध मा-बाप को यात्रा में ले जाना उसको कष्ट देना है! सुनो तो सोचो भी। माता-पिता को यात्रा कराना बहुत अच्छी बात है लेकिन ये भी मत भूलो, माता-पिता स्वयं अडसठ तीरथ है! हां, हो सकता है तीर्थ में कभी बाढ़ आए! मा-बाप उग्र बन जाये। गंगा में भी बाढ़ नहीं आती? कभी बूढ़े बुझर्ग रोष कर ले उसी समय उसको तीर्थ समझो! बाढ़ आई है, अभी उतर जायेगी। लोग मेरे पास आते हैं,'बुझर्ग डांटते हैं!' आप ताजी-तरोजी बुद्धि लेकर आये हैं, उसका पुराना चित्त है, आदर दो। लेकिन श्रवणकुमार ने केवल श्रवण किया। अब जो तीर्थ में जायेंगे, न मूर्ति देख पायेंगे, न किसीको देख पायेंगे, न कुछ! उसको ले गया! और दशरथ ने भी वोही भूल की! दशरथ को भी देखना चाहिए कि जलाशय में पशु पानी पी रहा है कि कोई आदमी घड़ा डूबो रहा है? उसने भी श्रवण से ही निर्णय किया, देखा नहीं कि ये पशु है कि कोई ओर है। और शब्दवेधी बाण मार दिया! और आप जानते हैं, श्रवणकुमार की मृत्यु हो जाती है।

दशरथ को देखना चाहिए था, श्रवण को सोचना चाहिए था! लेकिन केवल श्रवण कभी-कभी ऐसा अनर्थ करा देता है! और यहां, श्रवण मरा! उनके बाद उनके मा-बाप मरे। और देखे बिना शब्द सुनकर बिलकुल बिना सोचे बाण मारा वो दशरथ को भी उस तपस्वी के शाप से मरना पड़ा। मृत्यु के सिवा कोई चीज़ हाथ नहीं लगी! श्रवण तो जीवन देता है, मौत नहीं देता। मरा-मरा जीवन में होश प्रगट देता है। श्रवण तो अमृत की वेल है; अमी सींचता है।

नये श्रोता हैं इसमें, जो कहते हैं, ''बापू, पहली बार कथा सुन रहे हैं। हम कभी हार चुके थे, हम युवान है, हम डिप्रेस हो गये थे। लेकिन पांच दिन से कथा सुन रहे हैं। लगता है कि नहीं, बापू की कथा सुने, अब हम कभी हारेंगे नहीं।'' कथा तो जीवन देती है। मेरे पास प्रमाण है। लेकिन ये कथा से होता हो तो मैं बिलकुल सावधान हूं, ये गहना मेरा नहीं, देवरानी का है! मेरे लिए तो एक ही सूत्र है, 'हारे को हरिनाम।' सोचो, बहुत काम करती है कथा। लेकिन सुने कैसे वो भी तो बहुत जरूरी है। 'रामचरित मानस' में एक पंक्ति है-

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
बेद पुरान उदधि घन साधू।।

समंदर का पानी ही मेघ बनता है। लेकिन समंदर का पानी डायरेक्ट पीया नहीं जाता। लेकिन वहीं से बादल बने, और बादल के बाद जब पानी बरसता है तो पेय जल हो जाता है। वेद, पुराण, शास्त्र, सद्ग्रंथ ये तो समुद्र है। सीधा नहीं पीओ। डायरेक्ट पढ़ लेने से नमकीन लगेगा। साधु-संत बादल है। वो इसी वेद के रहस्यों को खारे और न पाच्य हो ऐसे अगम-जटिल सिद्धांतों को मीठा बनाकर हम को पीला देता है। तुलसी बुद्धपुरुष है इसीलिए हमको आनंद आता है। शुकदेव बुद्धपुरुष है इसीलिए इसकी कथा के माध्यम से हमें आनंद आता है। किसी साधु के मुख से निकले सूत्र नितांत पवित्र है लेकिन हमारी वो रजोगुणी श्रवण की वृत्ति के कारण, तमोगुण की वृत्ति के कारण बिलकुल शुद्ध सूत्र भी डाबर बन जाता है। इसीलिए तुलसी लिखते हैं, सद्बुद्धि से, विवेक से बहुत सावधानी से सुनना चाहिए। संगमर्मरी फर्श हो, मिट्टी न हो तो मेघ का पानी स्वच्छ तो रहेगा लेकिन टिकेगा नहीं, बह जाएगा। एक कान से दूसरे कान निकल जाएगा! तब तुलसी कहते हैं, पानी इकठ्ठा होने के लिए गहराई चाहिए। हृदय की गहराई हो। पूरे दिल से भगवद् कथा सुनी जाय। तो, श्रवण करना एक विज्ञान है। प्रभु को हम देख सके इसीलिए भगवान दिव्य दृष्टि देते हैं। कथा को बराबर उतार सके इसीलिए परमात्मा दिव्य श्रवण देते हैं। तभी कथा उतरती है।

तो बाप, अर्थ का फल दशरथ ने यज्ञक्रिया से पाया। और जीवन का परमार्थ प्राप्त किया रामरूप में। धर्म प्राप्त किया श्रद्धा से। और श्रद्धा के कारण धर्म के मूल स्वरूप को वो समझ गये। और योगक्रिया से कामनासिद्धि होती है। ये बिलकुल शास्त्रीय बातें है। लेकिन सावधान जरूर रहना योग में। योग के द्वारा मंगल कामनायें पूरी होती है और योगसिद्धि के द्वारा आदमी ज्यादा विषयी बन जाय तो काम तो मिल जाएगा लेकिन पतन हाज़िर रहेगा! योगीओं को योगभ्रष्ट होने में देर नहीं लगती! योगक्रिया से कामनापूर्ति हो जाती है। और मोक्ष जो फल है उसकी क्रिया है ज्ञानक्रिया।

तो मेरे भाई-बहन, दशरथजी को वशिष्ठजी ने 'पुन्यपुरुष' कहा है। ऐसे है महिपति दशरथ जिसकी हम कुछ संवादी सूत्रो में चर्चा कर रहे हैं हमारे आंतरिक विकास और आंतरिक विश्राम के लिए। न यहां कोई उपदेश है, न आदेश है। 'मानस' से मिला संदेश प्रेषित कर रहा हूं। काश, सही एड्रेस पर पहुंच जाये! दशरथ का एक रूप ओर-

राम बिरहँ दसरथ मरन मुनि मन अगम सुमीचु।
तुलसी मंगल मरन तरु सुचि सनेह जल सींचु।।

तुलसीजी 'दोहावली' में कहते हैं कि राम के विरह में प्राण छोड़नेवाले दशरथजी की मृत्यु 'सुमीचु' सुंदर है; मंगल मरन है ये। और ये मंगल मृत्यु तुलसी एक नयी अदा से पेश करते हैं। दशरथ के मृत्यु को तुलसी ने वृक्ष की उपमा दी है, 'तरु'; मृत्यु वृक्ष है। मृत्यु एक हमारी छांव है। मृत्यु फलप्रद है। लेकिन तुलसी कहते हैं, वृक्ष को सिंचना पड़ता है। मृत्यु को पवित्र भाव से सींचो, भागो मत। एक बिलकुल नया दर्शन 'दोहावली' में मृत्यु का। जैसे 'महाभारत' में मृत्यु को एक सुंदर स्त्री के रूप

में प्रस्तुत की है। धन्य है भारत के ऋषि जो भयानकता को कितनी सुंदरता दे देते है! मेरे लिए मृत्यु का वृक्ष फलप्रद है। तुलसी ही कह सकता है। तो, दशरथ की मृत्यु सुमृत्यु है, एक पेड़ है। मरण मंगलमय हो गया। कितना मंगलमय! और तुलसी की लेखनी तुरंत देखिये-

जिअन मरन फलु दसरथ पावा ।
अंड अनेक अमल जसु छावा ।।

जीवन का फल मिला और मरण का फल भी मिल गया। अनेक ब्रह्मांडों में निर्मल यश व्याप्त हो गया। और रामस्मरण के कारण मरण को उसने सुशोभित कर दिया। ऐसी मोत स्मरणवालों को मिलती है साहब! मैं दिल से अपील करूं कि थोड़ा स्मरण बढ़ाओ ना यार! मरण क्या करेगा? मेरा कहना इतना ही है, डरना मत। बाकी सावधान तो जरूर रहना।

अयोध्या संपन्न है, लेकिन जब से जानकी आई है तब से सुख की ओर वृद्धि होने लगी है। धीरे-धीरे मेहमानगण बिदा होने लगे हैं। अब महाराज विश्वामित्र भी बिदा मांग रहे हैं। साधु को किसीके कार्य में जाने से उसके कार्य में आनंदवर्धन होता हो तो जाना चाहिए लेकिन कार्यपूर्ति के बाद साधु को चाहिए फिर अपनी साधना में लग जाये क्योंकि लोकमान्यता तो अग्नि है, साधु की तपस्या को अक्सर जला देती है! विश्वामित्र एक असंग तपस्वी है, महामुनि ज्ञानी है, वो जा रहे हैं। और गोस्वामीजी ने अद्‌भुत प्रेरणादायी करुण रस में डूबोकर चौपाई लिखी है-

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

दशरथजी विश्वामित्रजी से कहते हैं, 'हे नाथ, ये संपदा मेरी नहीं है, आंतर्-बाह्य दोनों संपदा आप की है।' सम्राट कह रहा है, 'मैं आप का सेवक हूं और मैं अकेला नहीं, मेरी रानिओं के साथ, मेरे पुत्रों के साथ मैं तो आप के चरणों का दास हूं। भगवन्, आप तो तपस्वी है लेकिन कभी-कभी तपस्या में, सुमिरन में आप को हमारी याद आये तो आप हम को दर्शन देते रहियो।' तुलसी ने 'बालकांड' में लिखा है, दुर्जन और सज्जन दोनों का एक ही काम है, दु:ख देना। दुर्जन आता है तब दु:ख देता है, सज्जन जाता है तब दु:ख देता है। साधु की बिदाई हुई है। धन्य है साधु! अकेले निकल गये! लेकिन राम का रूप याद आ रहा है। साधु क्या याद करता है? हरि का रूप। और राजा की संपदा को याद नहीं किया, राजा के भजन को याद किया, भक्ति को याद की। गोस्वामीजी 'बालकांड' को विराम देते हैं।

मैं आप से प्रार्थना करूं, आप कथा सुनो तो बिलकुल श्रद्धा से सुनो; गुणातीत, विशेषणमुक्त श्रद्धा से। रजोगुणी श्रद्धा से जब हम कथा सुनते हैं तब कहा गया कुछ और अपनी रजोगुणीवृत्ति के कारण अर्थ हम दूसरा कर लेंगे! तमोगुणी श्रद्धा से सुनेंगे तो करीब-करीब पूरा सुनेंगे भी नहीं! तमोगुण से ग्रस्त जो लोग है वो ऐसा आज भी मानते हैं कि कथा में क्या रखा है? बापू वोही! 'रामायण' वोही! उसको पता नहीं है कि'रामायण' में सबकुछ रखा है! लेकिन धन्य श्रवण वो है जब गुणातीत श्रवण हो। श्रवण करना एक विज्ञान है। प्रभु को हम देख सके इसीलिए भगवान दिव्य दृष्टि देते हैं। कथा को बराबर उतार सके इसीलिए परमात्मा दिव्य श्रवण देते हैं।

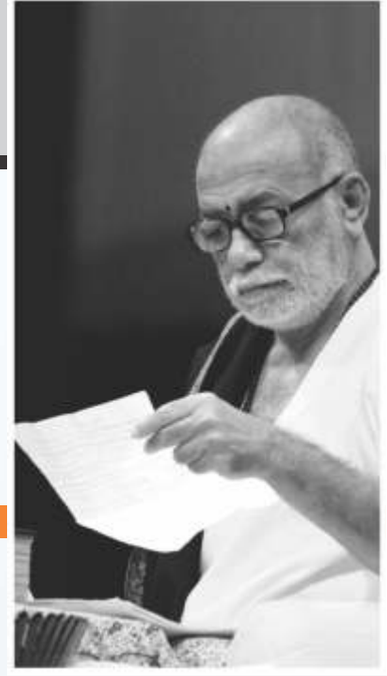

बुद्धपुरुष के अपराध से बहुत बचना

बाप! नव दिवसीय इस रामकथा के प्रेमयज्ञ में विराम के दिन आप सभी को मेरा प्रणाम। महाराज दशरथजी रघुकुलमनि है; बेदप्रसिद्ध व्यक्तित्व है; धर्म धुरंधर है; गुण की निधि है; ज्ञानी भी है। केवल ज्ञानी नहीं, हृदय में प्रभु की भक्ति है और बुद्धि में सारंगपानि को बिठाये हुए है। ऐसे 'मानस' के एक विशिष्ट पात्र के बारे में हम और आप मिलकर कुछ संवादी सत्संग कर रहे थे। आख़िर में मैंने कल भी कहा कि महाराज दशरथजी का व्यक्तित्व इतना विशाल है कि उसको बहुत सीमित शब्दों में ही नव दिन में कहा जाय। दशरथजी के जीवन के पहलू को हमने हमारे जीवन के दर्शन के लिए कई रूपों में देखा। एक आख़िरी पहलू मुझे आप के सामने रखना है। इससे पहले थोड़ा कथा का क्रम ले लूं।

कल संक्षेप में हमने 'बालकांड' को विराम दिया। 'अयोध्याकांड' की तीन-चार बस्तु पर आप ध्यान दे। 'अयोध्याकांड' का आरंभ है अतिशय सुख के वर्णन से। जानकीजी जब से अवध आई तब से अयोध्या का सुख बहुत बढ़ गया। सुख तो था ही लेकिन ओर बढ़ गया। और पहले भी और इस कथा में भी मैंने बहुत बल देकर कहा है कि यहां सुख और दु:ख की मात्रा समान रहती है। मानवी किसको सुख कहे, किसको दु:ख कहे, शायद उसको पता नहीं। कभी-कभी कुछ हमारे मन के अनुकूल घटना न घटी उसको हम दु:ख कहते हैं, तत्त्वत: ये दु:ख नहीं है। इंतज़ार करने से पता लगता है कि आख़िर में हमारा परम हित ही तो हुआ। तो जितनी मात्रा में अयोध्या में सुख का समुद्र उमड़ पड़ा था इतनी ही मात्रा में अब दु:ख आनेवाला है। और कारण बने कैकेयी के बचन। कैकेयी कारण इसीलिए बनी कि मंथरा का कुसंग। मैं युवान भाई-बहनों को फिर एक बार कहकर आगे बढ़ूं कि परहित न करो तो कोई चिंता नहीं, परपीड़ा न करो। परहित करने के लिए क्षमता चाहिए, परपीड़ा न करो इसीलिए थोड़ी-सी समझ चाहिए। और वो समझ मिलती है सत्संग से। ये विवेक की उपलब्धि होती है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

इसीलिए सत्संग न हो तो कोई चिंता नहीं। भूल से भी कुसंग न हो जाय; हमारी कंपनी खराब न हो।

मैं एक बात का खुलासा कर लूं। एक-दो चिठ्ठियां आज मुझे मिली है। उसमें लिखा है कि 'बस, अब हम कथा ही सुनना चाहते हैं बापू, और आप के सीताराम-परिवार में सम्मिलित होना चाहते हैं।' प्लीज़, मेरा कोई परिवार नहीं है, मेरा कोई ग्रूप नहीं है। कोई आप को भ्रमित करे 'सीताराम-परिवार' के नाम से तो ये केवल कथा का उपयोग कर रहे हैं। कथा के माध्यम से प्राईवेट प्रेक्टिस कर रहे हैं! मेरा कोई परिवार नहीं है। मेरा परिवार 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' पूरा जगत मेरा परिवार है। इसमें केवल मानवजात ही नहीं, जड़-चेतन सब आ जाता है। इसलिए आप भ्रमित मत होईएगा। और जो प्रचार करते हैं वो भी सावधान रहे! एक बात ओर भी मैं स्पष्ट करना चाहूं कि कई भाई-बहन अपने पितृओं के स्मरण में मेरे नाम से किताबें छप देते हैं! कई मेगझिन में मेरा फोटू लगा देते हैं कि लोग ये समझ लेंगे कि बापू का कोई मेगझिन है, बापू की किताब है! नहीं, प्लीज़, कल मेरे पास एक पुस्तक आई जिसमें था 'नित्य कर्मविधि', रचयिता मोरारिबापू! मैं तो सभी विधिओं से आप को मुक्त करना चाहता हूं। मेरा काम आप को विधि देना नहीं है, मेरा काम आप को विश्वास से भरना है। विधि से हरि नहीं मिलता, विश्वास से मिलता है। लाख विधि करो, विश्वास न हो तो कवायत है, कसरत है। इससे आंतर्शांति उपलब्ध नहीं होती। इसीलिए ऐसी किताब आप के हाथ में आये वो प्रमाणित भी नहीं है, प्रामाणिक भी नहीं है। इससे सावधान रहना।

मेरे नाम से केवल, केवल, केवल जो कल दो प्रसाद यहां से बांटा गया, 'मानस-महर्षि', 'मानस-गंगासती', वो ही मेरी पूर्ण प्रसन्नतापूर्वक की संमति से हो रहा है कि एक कथा का सार मेरे युवान भाई-बहनों के हाथ में देश-दुनिया में अंग्रेजी में-हिन्दी में जाये। उसको जब अनुकूल पड़े, कुछ देखे और कुछ फायदा हो जाये। केलेन्डर देखने से धंधा अच्छा नहीं चलता लेकिन पता लगता है कि आज तारीख कौन है? वैसे ये छोटी-सी पुस्तिका पढ़ोगे तो तुम्हारा धंधा अच्छा नहीं चलेगा लेकिन धर्म क्या है उसका पता लग जाएगा। 'मानस' के आधार पर जहां-जहां मेरी व्यासपीठ मुखर होती है उसीका एक बहुत विवेकपूर्ण संपादन हो जाता है। हर वक्त मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। मुझे दिखाया जाता है। मैं उसके मुख्य-मुख्य अंश पढ़ लेता हूं। इसीलिए युवान भाई-बहन, सत्संग हो तो अच्छी बात है। संत मिले तो सत्संग हो। संत मिलता है हरिकृपा से। हरिकृपा मिलती है चतुराई छोड़ने से। चतुराई छूटती है हरिस्मरण से, धीरे,धीरे,धीरे। तो, सत्संग न भी हो लेकिन कुसंग से बचे। कैकेयी की क्रियाशक्ति कुसंग से लिप्त हो गई। पूरा माहोल बदल दिया। राम को वन मिला। अवध अनाथ हुई।

सुमंत के रथ में राम-लखन-जानकी तमसा तट पर निवास करके शृंगबेरपुर पहुंचे। दूसरे दिन सुमंत को बिदा। प्रभु ने केवट से नौका मांगी। केवट ने चरण धोये और प्रभु गंगापार हुए। दूसरे दिन प्रभु आगे बढ़े। मार्गदर्शक के रूप में सहयात्री हुआ निषादपति गुह। भरद्वाजऋषि के आश्रम में प्रयाग में आये। एक रात्रि रहे। वहां से आगे बढ़े। फिर बीच से निषादपति गुह को बिदा दी। प्रभु जमुना के तट से आगे बढ़े और वाल्मीकि के आश्रम में आये। वाल्मीकिजी से रहने की जगह पूछते हैं। वाल्मीकिजी आध्यात्मिक अर्थों में चौदह स्थान बताते हैं कि आप यहां-यहां रहो। उसके बाद प्रभु को वाल्मीकिजी ने स्थूल स्थान बताया। यद्यपि आध्यात्मिक है वो भी और भगवान राम-लखन-जानकी चित्रकूट पधारें। सुमंत अवध लौटा। महाराज दशरथजी ने मृत्यु को मंगल किया। भरतजी आये। पितृक्रिया की। राजनैतिक चर्चा हुई। निर्णय हुआ कि पहले प्रभुपद फिर यदि प्रभु कहे तो राजपद।

श्री भरतजी पूरी अयोध्या को लेकर चित्रकूट के लिए यात्रा करते हैं। उसमें विघ्न आते हैं। कई बार ये आध्यात्मिक विघ्नों की चर्चा मेरी व्यासपीठ ने आप के

सामने रखी है। ये भी महत्त्व का है कि जब साधक चित्रकूट की यात्रा करता है, चित्रकूट मानी चित्त; आदमी चैतसिक भूमिका में जाना चाहता है जहां निरंतर सीयराम का विहार है ऐसी चैतसिक भूमिका में पहुंचने में साधक को जो विघ्न आते हैं। व्रतभंग करना पड़े। इससे पहले कि कुछ रास्ते में आनेवाले लोग हमारे बारे में गेरसमझ पैदा करे। उसके बाद कोई संत-साधु हमारे प्रेम की कसौटी करे कि सब छोड़कर आये है, त्याग पक्का है कि कच्चा? बीच में रिद्धि-सिद्धिओं का आवरण डाला जाये। ऐसे सब विघ्न, ये सब साधना के विघ्न है। देवीगण भी विघ्न डाले कि राम-भरत की भेंट न हो। आख़िर में जब भक्त भगवान के पास पहुंचता है तब एक विघ्न आता है कि अपने परिवार की निकट की व्यक्ति ही हमारा विरोध करे। इस विघ्न को मेरी व्यासपीठ बहुत-बहुत महत्त्व का मानती है। महत्त्व का इसीलिए कि जब हरि मिलनेवाले हैं, तब एक संनिकट व्यक्ति ही विरोध करे! विरोध करे इतना ही नहीं, मार देने का संकल्प करे कि मैं मार दूंगा उसको! जब हमारे परिवार से कोई विघ्न आये, ग्लानि तो होगी कि आज तक जिसको अपना समझा था वो विरोध कर रहा है? लेकिन उस समय साधक को चाहिए प्रसन्न भी होये कि जब बिलकुल निजी व्यक्ति विरोध करे तब समझना कि अब चित्रकूट दूर नहीं है, अब राम दूर नहीं है। ये बाधा पार हो जाये तो प्रभु का पद तुरंत उपलब्ध हो जाएगा। गुजराती में एक शे'र है भावनगर के मर्हूम शायर नाझिर देखैया का-

पथिक तुं चेतजे पथना सहारा पण दगो देशे।
धरीने रूप मंज़िलनुं उतारा पण दगो देशे ।

हे यात्रिक, जरा सवधान रहियो क्योंकि जिस यात्रा में तू तेरा सहारा समझ रहा है वो बैसाखी ही तूझे दगा देगी! पांडवों को लाक्षागृह में रखा तो लगा चलो, चैन से रहेंगे; लेकिन यही उतारा ने ही उसको दगा दे दिया! लाक्षागृह से बामुश्किल निकले!

मने मजबूर ना करशो, नहीं विश्वास हुं लावुं।
अमाराना अनुभव छे, तमारा पण दगो देशे।

हमें अपनों का अनुभव है, तू भी सावधान रहना, तेरे भी दगा देगा। कल नीतिनभाई शे'र कह रहे थे ना कि सब का प्रहार नोखा होता है!

आ फूल छे के पथ्थर नक्की नथी थतुं कंई,
छे आखरे अहीं तो सौनो प्रहार नोखो।

कोई फूल, कोई पत्थर लेकिन प्रहार सब प्रहार है साहब! 'तारो विचार नोखो, मारो विचार नोखो' ये जो बात है! आगे से जुहार करो और पीछे से गलत प्रचार करो! तो तुम भौतिक सुख भी ठीक नहीं भोगोगे! आध्यात्मिक में तो प्रवेश है ही नहीं! सोचो तो!

जिस बाग से गुजरो तो ये दुआ करते चलो,
जिस शाख पे हो फूल ये डाली हरी रहे ।

दुनिया की किसी भी कला देखकर आनंद क्यों नहीं होता है कि ये ओर आगे बढ़े, ओर आगे बढ़े! बिलकुल मूढ़ता है जीवों की इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है! फायदा तो है ही नहीं। लिख लो लोहे की लकीर से। सफलता तो कतई नहीं होगी! मन के मोदक है सब! हमने दिखा दिया! हमने बदला लिया! घाटे का सौदा कर रहे हो। ये मूढ़ता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जिस परिवार में मुस्कुराहट आई हो तो अल्लाह से प्रार्थना करो ये डाली हरी रहे।

बदले न अपने आप को जो थे वोही रहे ।
मिलते रहे सभी को मगर अज़नबी रहे ।
-निदा फ़ाजली

कितने-कितने को मिले हम? लेकिन पहचान नहीं पाया कि कौन मेरा है, कौन पराया है? सावधान! तो, निकटवाली व्यक्ति जब मृत्यु तक का विरोध करे कि मैं मार दूं! नरसिंह मेहता के अपने लोगों ने विरोध किया। नागरों ने ही विरोध किया, ये फ़रेबी है! राजा तक फरियाद की। जितने-जितने बुद्धपुरुष हुए हैं, सब को यही नौबत आई!

बाप, भरत को चित्रकूट पहुंचते-पहुंचते लक्ष्मण ने विरोध किया और लक्ष्मण ने कहा कि मैं कैकेयी के बेटे को मार दूंगा, जिसने मेरे राम को वनवास दिया! ऐसी नोबत आये तब समझो चित्रकूट निकट है। अब हरि मिलने को है। अब मुलाकात बिलकुल बाकी है। ऐसे कुछ विघ्न है मेरी समझ में साधक की यात्रा के। भरतजी पादुका लेकर लौटते हैं। पादुका को अयोध्या के राज्य सिंहासन पर स्थापित करते हैं। गांधीजी ने ट्रस्टीशीप का जो सिद्धांत पकड़ा वो 'रामायण' के इस प्रसंग से उठाया। आदमी मालिक न हो, माली हो। मालिक तो कभी घूमता भी नहीं बाग में! माली तो हर पौधे, हर गुल की मावजत करता है। भरतजी पादुका को राज्यसिंघासन सोंपते हैं, फिर नंदीग्राम में निवास करते हैं।

'अरण्यकांड' में प्रभु स्थलांतर करते हैं। पंचवटी में निवास करते हैं प्रभु। लक्ष्मणजी ने एक बार प्रभु से पांच प्रश्न पूछे। बड़े आध्यात्मिक प्रश्न पूछे। रामजी ने उसका बहुत प्रसन्नता से जवाब दिया। लक्ष्मण जाग्रत है; प्रभु के सत्संग से ओर जाग्रत हो गये, तब शूर्पणखा आई। आदमी जितना ज्यादा जागे इतने ज्यादा विघ्न आते हैं। शूर्पणखा आई है। प्रभु ने दंडित की। खर-दूषण का निर्वाण हुआ। शूर्पणखा ने रावण को उकसाया। उस समय रावण का चित्र भी मेरे साधक भाई-बहन, आप जरा सोचो! साधना के लिए बड़ा उपयोगी है। किसी भी घटना में क्या होता है, हमारा मन कुछ कहता है; बुद्धि कुछ कहती है; चित्त कुछ कहता है; अहंकार तो कुछ करने ही नहीं देता! सोचने ही नहीं देता! चार-चार रस्सी से जीवात्मा बंधा है। ये सोये-सोये रावण की जो अंत:करणीय वृत्ति का एक बहुत सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है मेरे गोस्वामीजी ने। मन क्या कहता है रावण का?

खर दूषन मोहि सम बलवंता ।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ।।

मन कहता है कि खर-दूषण तो मेरे समान बलवान है। मन तो वहां सोचने लगा है कि मेरे समान बलवान को मार दिया है तो कोई सामान्य तो नहीं होगा! लेकिन निर्णय करने का सामर्थ्य तो मन का नहीं है। वो तो है बुद्धि का। तो बुद्धि ने एक रस्सी खेंची। बुद्धि ने निर्णय किया ये भगवान ही हो सकता है। तो चित्त का जनम-जनम के संस्कार ने कब्ज़ा लिया! स्वभाव में ही था-

होइहि भजनु न तामस देहा ।

मेरे से भजन नहीं होगा! वो बोलता है, भजन नहीं होगा। इधर मन ने खिंचा कि खर-दूषण समान उसको मारनेवाला कोई सामान्य नहीं हो सकता। इधर बुद्धि ने निर्णय करना सोचा कि भगवान है। इधर चित्त का संस्कार कहता है कि हम से भजन नहीं होगा। तो अब क्या करे? सुबह में निर्णय किया कि मैं बिरोध करूंगा। ये कौन है? मैं मारीच को लेकर जाउंगा उसकी स्त्री को उठा लाउंगा! ये अहंकार है। अहंकार दंभ और पाखंड करने के लिए तैयार हो गया। रावण ने जानकी अपहरण का निर्णय किया। मारीच के पास गया और मारीच को सुवर्ण मृग बनने को कहा। आप वेश बदल सकते हैं, वृत्ति और वाणी नहीं बदल सकते। रावण ने वेश बदला लेकिन आवाज़ नहीं बदल पाया और अंदर की वृत्ति नहीं बदल पाया। रावण में बहुत अच्छी क्वोलिटिस है। आप जानते हैं, मैंने रावण पर दश कथा गाई है। नब्बे दिन बोला हूं मैं रावण पर; इतना समय दशानन को दिया है। दशरथ को केलव नव दिन दे रहा हूं, सोचो! रावण की समस्या है, उसमें गुणाभिमान बहुत है, 'मेरा बल! मेरी साधना! मेरा शौर्य! मेरी संपदा! मेरा ऐश्वर्य!' ये सब गुणाभिमान आदमी का पतन करता है। तो अहंकार ने रावण की सभी बातें उड़ा दी मन की, बुद्धि की, चित्त की।

रावण का अभिमान और वेशपलटा, 'जती के बेषा।' और इस आदमी ने परशुराम से विद्या पाई तब कहा, मैं ब्राह्मण हूं। सोचो! दोनों कुछ ओर रूप में पेश हुए। और जब हम जो है उसी रूप में पेश नहीं आते तब मार खानी ही पड़ेगी! कुछ समय का अंतराल होता है। पिटे जाओगे। दुनिया में किसीका अपराध मत करना

लेकिन यदि किसी बुद्धपुरुष के शरणागत हो, तो इसके अपराध से तो बहुत बचना। वो परशुराम भी नहीं होता। ध्यान देना, वो तो बुद्ध होता है। परशुराम तो थोड़े आक्रमक भी है। बुद्धपुरुष हमारे मन की रक्षा करता है, हमारे तन की रक्षा करता है। जैसे माँ बालक के तन की रक्षा करती है, मन की रक्षा करती है, धन की रक्षा करती है। बुद्धपुरुष भी यही करता है। हमारे शरीर की शुद्धता का ध्यान रखता है। फिर हमारे मन में कोई कषाय न आ जाये, हमारे मन में कोई विकार न आ जाये क्योंकि उसको पता है कि आश्रित के मन का क्या ठिकाना? और हमारे धन की भी रक्षा करता है कि मैं मेरे आश्रित के धन को कहीं अकारण बरबाद होने न दूं।

तो, रावण यति के बेश में आता है। बेश तो बदला, वाणी और वृत्ति कैसे बदले? जानकी उनके वचनों समझ गई इसीलिए जानकी ने वाणी पकड़ी, 'आप का वेश ईष्ट का है कि चरण छूउं लेकिन बोली दुष्ट की है!'पकड़ा गया! रावण जानकी का अपहरण करता है। जटायु ने कोशिश की जहां तक अपनी क्षमता थी। आख़िर में जटायु शहीद हुआ। रावण इस तरह जानकी को लेकर अशोकवाटिका में बंदी बनाता है। यहां मृग को मारकर प्रभु लौटते हैं। और सीताविहीन कुटियां को देखकर प्राकृत लीला करते हुए सामान्य आदमी की तरह प्रभु रोने लगे। राम-लखन दोनों जानकी की खोज में निकल पड़ते हैं। जटायु मिले। जटायु ने कहा कि ऐसा हुआ। बस, आप के चरणों में प्राण छोड़ना है। जटायु का संस्कार हुआ। वहीं से सीतान्वेषण करते हुए दोनों भाई कबंध का उद्धार करके शबरी के आश्रम में आते हैं। शबरी को प्रभुदर्शन हुए, 'स्तुति कैसे करूं, मैं अधम हूं।' प्रभु ने कहा, मैं जात-पात-नात किसीको नहीं देखता; मैं तो भक्ति और प्रेम के नाते को कुबूल करता हूं।' शबरी को माध्यम बनाकर प्रभु ने भक्ति की नव विधा बताई। शबरी ने मार्गदर्शन किया, आप पंपासरोवर जाईए। वहां सुग्रीव से मैत्री होगी, जानकीजी की ख़बर प्राप्त करने में आप को सुविधा होगी। राम-लक्ष्मण पंपासरोवर आये। वहां नारद से भेंट होती है। नारद ने भगवान से संतों के लक्षण पूछे और प्रभु ने कहा, शेष और सरस्वती भी साधु के लक्षण बोलने बैठे तो वर्णन नहीं कर पाते। तुलसी ने 'अरण्यकांड' पूरा कर दिया।

'किष्किन्धाकांड' में राम-हनुमान का मिलन हुआ। सुग्रीव से मैत्री, वाली को निर्वाण प्राप्त हुआ। अंगद को युवराजपद दिया। प्रभु ने चातुर्मास किया। उसके बाद सुग्रीव को सावधान किया। जानकी की खोज का अभियान चला। अंगद को नायक बनाकर जामवंत को मार्गदर्शक बनाकर मूल टुकड़ी को दक्षिण में जाने का आदेश हुआ। सब से पीछे हनुमानजी ने प्रभु को प्रणाम किया। प्रभु को लगा कि कार्य इससे होगा, इसीलिए प्रभु ने मुद्रिका हनुमानजी को दी। जामवंत ने मार्गदर्शन किया और हनुमानजी लंका जाने के लिए तैयार। 'किष्किन्धा' का समापन। 'सुन्दरकांड' का आरंभ-

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई।।

हनुमानजी और जानकीजी का मिलन हुआ लंका में। मधुर फल खाये; तरु तोड़े और फिर हनुमानजी को इन्द्रजित पकड़कर रावण की सभा में प्रस्तुत कर देता है। रावण को अपना तेजोवध लगा तब उसने कहा, इसको मृत्युदंड दे दो। फिर हनुमानजी की पूंछ जलाने की कोशिश की और फिर पूरी लंका जली! माँ ने चूडामणि दिया और हनुमानजी निकल पड़े। सब रामके पास आये। प्रभु की सेना समंदर के तट पर आई। यहां विभीषण को निष्कासित कर दिया। विभीषण राम के शरण में आया। स्वीकारा गया। उसके बाद तीन दिन बीत गये, समुद्र की जड़ता; उसने कोई जवाब नहीं दिया। और फिर समुद्र प्रभु को सेतु के लिए राजी करके निकल पड़ता है।

'लंकाकांड' के आरंभ में सेतुबंध की रचना हुई। उत्तम परम धरणी देखकर प्रभु को लगा, यहां शिव की

स्थापना करे। और भगवान शिव की स्थापना राघव के हाथों से हुई। उसके बाद सब ने सागर पार किया। सुबेल पर प्रभु ने डेरा डाला। यहां रावण को ख़बर मिली कि तपस्वी आ गये हैं फिर भी कोई भय नहीं ये आदमी को! प्रभु की ओर से राजदूत के रूप में अंगद को भेजा गया। संधि हो न पाई। युद्ध अनिवार्य हुआ। धमासाण युद्ध होता है। आख़िर में रावण को इकत्तीसवें बाण से प्रभु ने नाभिभेद किया और जीवन में पहली और अंतिम बार रावण ललकार के साथ बोला, 'राम कहां है?' जमीन पर गिर गया। आख़िर शब्द उसके मुख से 'राम' निकला।

दशरथजी का एक ओर व्यक्तित्व मैं संक्षेप में दिखाकर कथा को विराम दूं। रावण के निर्वाण के बाद ब्रह्मादिओं ने प्रभु की स्तुति की। उसके बाद-

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए ।
तनय बिलोकि नयन जल छाए ।।

'रामचरित मानस' में यहां दशरथजी का अंतिम दर्शन है। लिखा है, उसी समय दशरथजी वहां आये। छ बार 'राम' 'राम'बोलकर वो सुरधाम गये थे। आज वहीं आये। प्रश्न ये उठताहै कि जिस बोड़ी का अग्निसंस्कार हो चुका है वे बोड़ी लेकर कोई दुबारा आ सकता है? स्थूल अर्थ में भी संभव नहीं है। बौद्धिक जगत में भी मान्यता देना मुश्किल है। लेकिन यहां साधना का सत्य है। जो आत्माएं मोक्षवादी नहीं है वो आत्मा अशरीरी घूमती रहती है। आप मेरे पास प्रमाण मांगे तो मैं नहीं दे सकता लेकिन इस पक्ष को मैं कभी नकार नहीं सकता। साहब! मैंने बीच में भी इस कथा में कभी कुछ संकेत किया है कि कुछ अशरीरी आत्मा जो बोड़ी के अभाव में स्वयं काम नहीं कर सकती वो दूसरे उनके समान दिखते हैं तब उनके पास आकर कहती है कि ये काम तूम कर दो। तब वर्तमान कोई फोर्म काम में लग जाता है। तो, साधना का ये सत्य है।

मेरा कहना ये है मेरे श्रावक भाई-बहन, उस समय दशरथ की अशरीरी चेतना आई। और चेतना केवल पिंड नहीं है, केवल फोर्म नहीं है; बाकी चेतना सब कुछ है। चेतना हंस सकती है, रो सकती है, पुलकित हो सकती है, रोमांचित हो सकती है, चेतना छू सकती है। यहां चेतना आई ओर तुलसी कहते हैं, 'तनय बिलोकि।' चेतना ने अपने पुत्रों को देखा। और चेतना की आंख में आंसू आ गये। 'नयन जल छाए।' दोनों भाईओं ने दशरथ को प्रणाम किया। राम तो परम चैतन्य का नाम है। इससे उपर कोई चेतना नहीं है। और लक्ष्मण जाग्रत चेतना का नाम है। राम तुरीयावस्था का तत्त्व है, लक्ष्मण जाग्रत अवस्था का तत्त्व है। दोनों भाईओं ने पितु को प्रणाम किया। चेतना बाप के रूप में घूमती है, माँ के रूप में घूमती है, जो मुक्तिवादी नहीं है। हमारी थोड़ी पात्रता होनी चाहिए। अब गोस्वामीजी कहते हैं कि दशरथजी की मुक्ति क्यों नहीं हुई? ये क्यों आत्मा भटकती है? हमारे यहां तो कहते हैं, आत्मा भटकती है! अरेरे, बेचारे को क्या हुआ! यहां उसकी आत्मा भटक नहीं रही। भगवान राम ने पितु के प्रेम को पहले पहचाना था। इसीलिए उसको भेदभक्ति प्रदान कर दी थी। और भगवान पिता और पुत्र की तरह व्यवहार कर रहे हैं ये चेतना से।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ ।
जीत्यों अजय निसाचर राऊ ।।

पिता की चेतना से बात करते हैं। आप के पुन्य प्रताप से, आप की अद्‌भुत चेतना के कारण हमने अजय माना जाय उस रावण को जीत लिया है। नयन सजल हुए। चेतना एकदम पुलकित हुई, गोस्वामीजी कहते हैं। और प्रभु राज़ खोलते हैं कि भगवान ने उसको भक्ति दी थी इसीलिए मोक्ष नहीं पाया था। यह एक साधना का रहस्य है। उसको मैं बहुत प्रमाण के साथ आप के पास नहीं पेश कर पाउंगा। प्रमाण तुम खोजो! लेकिन ये सत्य तो है, सत्य तो है, सत्य तो है। चेतना का जगत अनूठा है। बहुत जानने से भी कन्फ्यूज़ हो जाओगे! जान सकता है वो ही और जानकर धैर्य रख सकता है वो ही जिसने बहुत जनम की साधना इकठ्ठी की हो; सद्‌गुरु की पूर्ण कृपा का वारसदार हो और परमात्मा पूरा-पूरा बरस रहा हो जिस पर। उसका ये जीवन का सत्य होता है। बाप, तो

दशरथजी की चेतना आई। दशरथजी का दर्शन यहां आख़िर में होता है। मेरी व्यासपीठ इस रूप में दशरथ को देखती है।

राम और जानकी का मिलन हुआ। पुष्पक में अयोध्या पहुंचते हैं और फिर अयोध्या में आनंद छा गया। और वशिष्ठ महाराज ने राम के भाल में तिलक किया। त्रिभुवन को रामराज्य यानी प्रेमराज्य प्रदान करते हुए भगवान वशिष्ठजी ने राम के भाल में तिलक किया। छ मास बीत गये। अब प्रभु ने हनुमान को छोड़कर सब को बिदा दी। समय मर्यादा पूरी होने के बाद भगवती जानकी ने दो पुत्रों को जनम दिया। तीनों भाईओं के घर भी दो-दो पुत्रों की प्राप्ति हुई। अयोध्या के वारिस के नाम देकर तुलसी ने रघुवंश की कथा को रोक दिया। उसके बाद आप जानते हैं कागभुशुंडि का चरित्र है। गरुड के सात प्रश्न है। भुशुंडि ने सात प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। यहां याज्ञवल्क्यजी ने पूरा किया कि नहीं स्पष्ट नहीं है। और यहां महादेव ने कथा को विराम दिया और गोस्वामीजी अपने मन को सुनाते हुए आख़िरी संदेश देते हैं-

एहिं कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप व्रत पूजा।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहि।।

तुलसीजी कहते हैं, 'हे जीव, हे मन, इस कलियुग में ओर कोई साधन हम नहीं कर पाते हैं; एक ही साधन है, 'रामहि सुमिरिअ', ये तुलसी का मत है। अब मैं कहूं, राम को स्मरो इसका मतलब सत्य को ध्यान में रखो। 'गाइअ रामहि', राम को गाओ। गाता कौन है? जो प्रेम करता है वो गायेगा; तो राम को गाना प्रेम है। 'संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहि।' और संतत भगवान के गुण को सुनो, ये कोई बुद्धपुरुष की करुणा है। तो ये सत्य, प्रेम, करुणा उसमें हम जितना जी पाये। जीव हैं हम लोग लेकिन जितना कर पाये ऐसा संकेत गोस्वामीजी ने किया।

बाप, ये चारों परम आचार्यों ने अपने-अपने श्रोताओं के सामने भगवद्‌कथा को विराम दिया। आज मैं भी अपनी वाणी को विराम देने की ओर हूं तब ओर कुछ नहीं कहना है। नव दिन की इस कथा गायन से जो कोई बात आप के सही एड्रेस पर पहुंची हो तो उसको आप संभालियेगा। और आशीर्वाद तो परमात्मा का है ही वर्ना कथा कैसे हो सकती है? फिर भी शुभकामना मैं जरूर व्यक्त करूं। मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। नव दिवसीय 'रामकथा', प्रेमयज्ञ 'मानस-दसरथ' यहां विराम ले रहा है। और इस नव दिवसीय रामकथा ऐसी अशरीरी समस्त चेतनाओं को मैं समर्पित कर देता हूं।

एक बात मैं स्पष्ट करना चाहूं कि कई भाई-बहन अपने पितृओं के स्मरण में मेरे नाम से किताबें छप देते हैं! कई मेगझिन में मेरा फोटू लगा देते हैं कि लोग ये समझ लेंगे कि बापू का कोई मेगझिन है, बापू की किताब है! कल मेरे पास एक पुस्तक आई जिसमें था 'नित्य कर्मविधि', रचयिता मोरारिबापू! मैं तो सभी विधिओं से आप को मुक्त करना चाहता हूं। इससे सावधान रहना। मेरे नाम से केवल, केवल, केवल जो कल दो प्रसाद यहां से बांटा गया, 'मानस-महर्षि', 'मानस-गंगासती', वो ही मेरी पूर्ण प्रसन्नतापूर्वक की संमति से हो रहा है कि एक कथा का सार मेरे युवान भाई-बहनों के हाथ में देश-दुनिया में अंग्रेजी में-हिन्दी में जाये। उसको जब अनुकूल पड़े, कुछ देखे और कुछ फायदा हो जाये।

मानस-मुशायरा

मेरा साकी क्या मतवाला! जय सियाराम।
माथे टीका हाथ में माला, जय सियाराम।
कांधे की चादर तो बेशक काली है,
लेकिन चारों खूंट उजाला, जय सियाराम।

– विजेन्द्र परवाज़

बदले न अपने आप को जो थे वोही रहे ।
मिलते रहे सभी को मगर अज़नबी रहे ।
जिस बाग से गुजरो तो ये दुआ करते चलो,
जिस शाख पे हो फूल ये डाली हरी रहे ।

–निदा फ़ाजली

या तो कुबूल कर मुझे कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाईयों के साथ।

– दीक्षित दनकौरी

उसे किसने इज़ाज़त दी गुलों से बात करने की ?
सलीका तक नहीं जिसको चमन में पांव रखने का!

– मासूम गाज़ियाबादी

प्रेम विराने को गुलशन बना देता है।
प्रेम परिचय को पहचान बना देता है।
औरों की छोड़ो, मैं अपनी कहता हूं,
प्रेम इन्सान को भगवान बना देता है।

विषमता से नहीं, समता से भक्त हो सकते हैं

गीता-जयंती के अवसर पर जोडियाधाम में मोरारिबापू का मननीय प्रवचन

बाप! सबसे पहले इस भूमि को प्रणाम। इस वाङ्भूमि पर बिराजमान होकर एक विराग तपस्थली निर्मित करनेवाले पूज्य विरागमुनि की समाधिस्थ चेतना को प्रणाम। उन्होंने कई दीप जलाए। इस 'गीता विद्यालय' के बालक, बहनें सभी दीपकों को मेरा प्रणाम। उनमें निरंतर घी डालते पूज्यशास्त्री बापा, लाभुदादा, इस संस्था के अति बगल में जहां बीच में दीवार नहीं पर द्वार है और उस द्वार से निरंतर प्रेरणा देते पूज्य भोलेदासबापू, जिन्होंने निरंतर सिंचन किया है। बाबुभाई और गांव के ज्येष्ठजन, ग्रामजन, भाईयों-बहनों और हमारा कथाकार कुल। यहां त्रिवेणी का कार्यक्रम दो-तीन दिनों का हो या न हो परंतु 'गीता-जयंती' के अवसर पर आते ही है, यह इनका प्रेमदर्शन है, वे भी इन दीपों मे विशेष प्रकाश बना रहे ऐसे घी डालते रहते हैं। पूज्य शास्त्रीजी और 'गीता विद्यालय' में निरंतर प्रवृत्त रहते हुए ये विनु-द्वै, सभी कार्यकर्ता इस तेज को अधिक विस्तृत करते हैं। इन सबको मेरा प्रणाम।

शास्त्रीबापा ने कहा कि हम क्या कहें? मुझे भी लगता है क्या कहें? इतना आदर, इतनी श्रद्धा और मैं न आऊं तो मुझे ग्लानि हो। धर्म को तो जब ग्लानि हो तब हो। ये सभी गुरुजन छूट देते हैं, 'बापू, आप दूर हो तो भी आप को आना पड़ता है!' फिर भी ये सब छूट देते हैं। मुझे कोई बांधता ही नहीं है। साहब, मोह बांधता है, प्रेम बांधता नहीं है। मोह का लक्षण है बांधना। प्रेम का लक्षण है स्वातंत्र्य देना। पर मैं आता ही हूं। न आऊं तो ग्लानि होती है। ठाकोरजी कृपा करते हैं और पहुंच जाता हूं। मैं अभी प्लेइन में बता रहा था कि धर्मजगत में कईयों के पास अपने प्लेइन है। पर इतना घूमे नहीं हैं! मेरे पास कुछ भी नहीं है। मुझ जितना कोई घूमा नहीं है! सब पराया! इससे बढ़कर रामनाम का प्रताप कितना चाहिए? तो बाप, मैं अपनी प्रसन्नता पुनः व्यक्त करता हूं। लाभुदादा ने श्लेष में कहा कि गीतासंदेश तो मोरारि दे सके; वही दे सके। हम क्या दें? मैं क्या बोलूं यह पूर्व निश्चित नहीं होता। मैं पाटोत्सव में दर्शन करने गया। 'गीता' के मंगल मंत्रात्मक श्लोकों से अंकित अपना यह गीताभवन; मैं ये देख रहा था। उसमें नवम अध्याय के एक श्लोक की ओर ध्यान गया तो वहां से शुरू करूं जल्दी-जल्दी।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।

इन सभी छः सूत्रों की व्याख्या संभव नहीं है। पर पूर्वार्ध लेकर मैं आपकी बिदा लूंगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

प्रथम सूत्र, 'मन्मना भव', भगवान संदेश देते हैं यह मुझे प्रिय है। वे उपदेश नहीं देते। हां, आदेश दे सके, उपदेश दे सके। भगवे गणवेशधारी तीन लोग, तीन वस्तु तीन काम करते हैं। पोस्टमेन, पुलिसमेन और संन्यासी को भगवी वर्दी होती है। संन्यासी की ज्यादा गहरी होती है। पुलिस आदेश ही दे, 'एइ, हट! हाल एइ! यहां से लारी हटा।' वे सदा आदेश ही दे। संन्यासी उपदेश देते हैं। पोस्टमेन संदेश देता है। उस में शोक संदेश हो या शुभ प्रसंग का निमंत्रण हो! उदासीन पोस्टमेन को कुछ नहीं लगता। कवि दाद ने लिखा, 'भाई, तुं थाजे टपालनो थेलो।' तो भगवान कृष्ण संदेश देते हैं। वे उपदेश भी दे सकते हैं; 'युद्धाय कृतनिश्चय।' यों कहकर आदेश भी करे और हुकम भी करे। यहां भी जिस चार शब्दब्रह्म का उपयोग करने जा रहा हूं उसमें भी आदेश ही है एक प्रकार का। 'मन्मना भव', बाप! भगवान श्री कृष्ण हमें ऐसा अमृतमय संदेश देते हैं कि तू मुझ में मन रख। मुझ में मन रखता जा। तेरा मन मुझ में ही रहे ऐसा कर। हम सबकी इच्छा है कि उसीमें हमारा मन रहे। हम उसी में मन रखें। हमारा मन कहीं और न जाय। पर अनुभव क्या है? व्याख्यान तो बहुत अच्छा होता है। पर व्याख्यानकर्ता और श्रोता दोनों का अनुभव क्या है? मन रहता है? मन कैसे रहे? उसने तो कहा कि मुझमें मन रख। पर कैसे रखे यह कुछ बोलता नहीं है! उसके पास भी समय नहीं था। उसे भयानक युद्ध में यह सब बोलना था। पर उसकी कृपा से निम्बार्कीय परंपरा का बालक हूं अतः कृष्णपरंपरा में जीता हूं। उसने मेरे कान में कुछ कहा हो तो मुझे कहने की इच्छा होती है। तुने कहा, मुझमें मन रख। पर कैसे? यह तुम तक पहुंचे तो ठीक है। मैं ऐसा समझता हूं, जिसमें अपनी ममता रहती हो वहीं मन रहता है। भले धर्माचार्य ममता को गालियां दे। चाहे संतवाणी में कहा गया हो, 'मारी ममता मेरे नहीं, एथी मारे शुं करवुं?' सब सच है। पर जहां अपनी ममता हो यहीं अपना मन कायम रहता है। पिता को पुत्री पर ममता हो तो उसके सुख-दुःख में पिता का मन वहीं लगा रहता है।

मैं रोया परदेश में, भीगा माँ का प्यार।
दिल से दिल की बात हुई, ना चिठ्ठी, ना तार।

निदा फ़ाज़ली का दोहा है। तो, ममता होती है। गुरु को शिष्य पर ममता हो। शिष्य को गुरु पर ममता हो। मेरा 'रामचरित मानस' कहता है 'ममता मम पद कंज....' सीधी-सादी बात। कृष्ण में ममता रहेगी तो मन वहीं रहेगा। ममता होने दीजिए। एक ऊंचाई आने पर ममता नहीं रहती। पर अतिरेक मत कीजिए। ये सब कोरी हांकने की बातें हैं। ममता छोड़ो। 'मेल मन ममता' संतों ने गाया। उनकी ऐसी अवस्था होगी अत: गाया। बाकी बहुत मुश्किल है। हम जिस धरती पर खड़े हैं ऐसे सामान्य आदमी की कृष्ण में ममता होती है। यह शास्त्रीय आधार है। 'ममता मम पद कंज।' मैं तो 'रामायण' के पास पहुंचूं कि वहां से कुछ मिलता है? राम स्वयं कहते हैं, सभी प्रकार के ममता के धागे इकठ्ठे कर, एक डोरी बुनकर मेरे पैरों में बांध दे फिर उसीसे मुझे खिंच। फिर मैं खिंचता खिंचता-नहीं पर घसीटता हुआ आ पहुंचूंगा। बाप, 'भगवद्गीता' में से मैं इतना सीखा हूं कि कृष्ण में मन तभी रहेगा जब कृष्ण में मेरी और आपकी ममता बंद जायेगी। 'स एव साधु सुकृतो।' जो ममता संसार में है वही ममता यहां जुड़ जाय तो मन वहीं रहेगा।

'मन्मना भव मद्भक्तो' दूसरा सूत्र; मेरा भक्त बन, मेरी भक्ति कर। हम सबको होना है पर कैसे? हमने तो कहा कि मैं कृष्णदास हूं। पर वहां से हां आये तो बात बने। वो कहे, तू है। हमारे साहित्यकार, मायाभाई और कई कहते हैं, कुछ लोग कहते हैं कि प्रधानमन्त्री के साथ मेरी आधी पहचान है। कैसे? तो कहे, 'मैं उन्हें जानता हूं पर वे मुझे नहीं जानते!' ऐसा है! हम तो कहे कि हम भगत हैं। तुलसी आग्रह रखते हैं, 'तू बोले तुलसीदास मेरो', यदि तू बोलेगा 'तुलसी मेरा', उसी दिन मेरी भक्ति सफल होगी।

दूसरा सूत्र। समता रखेंगे तो भगत बनेंगे। जिन्होंने जगत में विषमता रखी है वे भगत नहीं बन पाते। भगत को विषमता नहीं होती। भगत को वर्णाश्रम नहीं होता। भगत को संप्रदाय नहीं होता। भजनानंदी का कोई ग्रूप या संकीर्णता नहीं है। साहब, वह तो व्यापक होता है। उनमें समता होती है। 'गीता' ने सम पर ज्यादा वजन दिया है। जहां देखे वहां निंदा-स्तुति, धूप-सर्दी, धूल-सोना, पुरस्कार-तिरस्कार, मान-अपमान! तुलसी कहते हैं, 'निंदा अस्तुति उभय सम।' देखिए, 'ममता मम पद कंज।' सीधी बात। समता रखिए। परिवारजन के साथ रखे जिनके साथ हमारा नादवंश या बुंदवंश जुड़ा है उतनी ही ममता नौकर-चाकर पर रखे। उस दिन भक्ति सफल होगी। आप साधु-संतों को जरूर पैसे दीजिए क्योंकि सत्कर्म में खर्च होते हैं। लेकिन आपके यहां जो काम करते हैं उसको एक छोटा-सा कमरा बना दीजिए। ऐसी समता आयेगी तभी भक्ति होगी। जहां विषमता है वहां हरि नहीं है। समता है वहीं परमात्मा है। हम इतना सीख ले तो भक्त हो सकते हैं। भगवान को विषम नहीं, सम पसंद है।

एक प्रश्न पूछुं? यों आपको अच्छे शगुन हो यह पसंद है? बाप, सच बताइयेगा। हां, पसंद है न? दिल से 'गीता' पर हाथ रखकर कहना। पांच हजार एक सौ पंद्रह या एक सौ पचपनवां 'गीता-जयंती' उत्सव है। मुझसे इन्टरव्यू में कहा गया, विश्व में किसी ग्रन्थ की जयंती का आयोजन होता है तो वह 'गीता' ही है। मुझे पता नहीं पर किसी ग्रन्थ की होती होगी तो मुझे आनंद होगा। और पैसे ज्यादा इकठ्ठे हो तो आप को पसंद आए या न आए? हमारा रमेशभाई हां कहने में पहला है! तीसरा, यह सबकुछ हो और मन की शांति मिले यह पसंद हो या न हो? अगर ये तीनों वस्तु चाहिए तो 'रामायण' में बताए गए चार कार्य कीजिए।

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम।।

अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते।।

रावण को अति गर्व के कारण शगुन-अपशगुन का होश नही रहा! 'स्रवहिं आयुध', जब क्षत्रिय के हाथ से हथियार गिर जाय वह अपशगुन है। ब्राह्मण के हाथ से 'वेद' या 'गीता' का ग्रन्थ गिर पड़े तो समझना अच्छा संदेश नहीं है। व्यापारी के हाथ से कलम गिर जाय, बहीखाता गिर जाय तो समझना कि अब ऐसा-वैसा नहीं होगा! अपशगुन है। अपने जैसे सेवक वाणी से समाज की सेवा करते हैं, संगीत से करते हैं, कथा से करते हैं, ऐसे सेवक से सेव्य की सेवा छूटे तब समझना कि अपशगुन है। तुलसी कहते हैं चार वस्तु नहीं छोड़ते हैं उन्हें कभी शगुन नहीं होते। उसे कभी भी मन की शांति नहीं मिलती। उन्हें संपत्ति प्राप्त नहीं होती। किसे? 'भूत द्रोह रत', जिसने भूतद्रोह किया होगा, जिसने दूसरों का द्रोह किया होगा; और मंदोदरी साथ देती हैं-

आजन्म ते परद्रोह रत पापौधमय तव तनु अयं।

तो, बाप! जो भूतद्रोह नहीं करता। समता रखकर बैठा है। अपने-पराये का बंधन छूट जाता है। जो भूतद्रोह करेगा उसे शगुन नहीं होंगे। उसे शांति नहीं मिलेगी, उसके पास दैवी संपदा नहीं होगी। 'भूत द्रोह रत मोहबस।' मोह का एक अर्थ होता है अंधकार, मूढ़ता, अंधत्व; जो धृतराष्ट्र में था। जो अंधकारप्रिय होगा, वो उलूक जैसा हो जायेगा। उसे शगुन नहीं होगा।

भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम।

राम से विमुख जीवन जीने का जिसने निर्णय किया उसे शगुन नहीं होगा। उसे संपत्ति नहीं मिलेगी। उसे मन की शांति नहीं मिलेगी। और 'रति काम', जिसे केवल स्वार्थ और भोग के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता! तो बाप, समता जैसा कोई शगुन नहीं है। हमें ये शगुन निर्मित करने पड़ेंगे। घर से निकले और कोई गाय को लकड़ी से मारकर हमारे सामने खड़ी कर दे तो! यह कैसे चलेगा कि गाय को मारकर सामने लाईए! वैसे तो सगाई करने जा रहे हैं तो होने से पहले ही टूट जाय! बस में बैठिए और पता चले कि लड़की ने ना बोली है! वापस लौटिए! क्योंकि आप गाय को मारकर लाए हैं! जीवन में शगुन निर्मित कीजिए। तलगाजरडा का साधु कहता है कि समता से बड़ा कोई शगुन नहीं है। जो समता का सेवन करेगा वो भगवान का भक्त होगा। फिर दुनिया चाहे हमें भगत कहे या न कहे! गोली मारिए! हमें भीतर से भगत, भक्ति और भजन का प्रमाणपत्र मिलता है।

'मन्मना भव मद्भक्तो', मेरा भक्त हो जा। समता से भक्त बनेंगे। ममता से उनमें मन रहेगा। 'मद्याजी', मेरा पूजन-अर्चन कर। यह आदेश है, मेरी पूजा कर। यह कृष्ण ही कह सकते हैं! मेरी ही पूजा कर। मेरे पास ही आ जा। मेरा ही भजन कर। ऐसी दादागीरी किसीमें भी नहीं आ सकती, साहब! यह तो कृष्ण ही कह सके। फिर भी परम स्वातंत्र्य का नाम कृष्ण है। इनके जीवन में कोई नकारात्मक चीज नहीं है। सभी का स्वीकार और समता शिरोमणि यह महापुरुष। साहब, वह कहे कि मेरा पूजन कर। हम किसी को कहे, मेरा पांव पूजना, तो कितनी शर्मिन्दगी उठानी पड़े! पर हमें उस दंभ के कारण कुछ दिखाई नहीं देता।

थोड़े समय पहले मैं आसाम के जोरहट में था। वाल्मीकि रामायण का एक आंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में एक दिन के लिए गया था। विद्वानों की सभा हो उसमें टी ब्रेक होता है। सभी दस मिनट में चाय पीते हैं। ऐसा ब्रेक मुझे विशेष पसंद आता है! कितना अच्छा लगता है जब हम चाहें वह मिल जाय! हम बगल में चाय पीने गए। मैंने चाय पी और पात्र दिया तो जो मुझे ले गया था उसने तुर्त लेकर पीना शुरू किया! मैंने कहा, खबरदार, तुम यह धंधा बंद करो! प्रेम हो और माँ बच्चे की जूठन पी ले यह

ठीक है। पर पूज्य मानकर जूठन पीना बंद करो! प्रेम की बात अलग है। अभी जख्म ताजे हैं! आप दूध से स्नान करो फिर उसमें से खीर बने! ये दंभ बंद होने चाहिए। मेरी पूजा कीजिए, मेरा अर्चन करो! साहब, यह क्या है?

समाज को बहुत सावधान रहने की जरूरत है। जिस दिन कृष्णपूजन की बात आई तब आखिर में सर्वानुमत से निर्णय हुआ, साहब! फिर भी उन्होंने सेव्यभाव रखा। यह इनका संदेश-दिन है। नहीं तो इनके सिवा जगत में पूज्यचरण कौन हो सकता है? दुश्मन भी न बोल पाए, साहब! उसका भीतर ऐसा ही बोले कि पूजनीय तो बस यही है। तो कृष्ण कहे, मेरी पूजा करो तो हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। पर सवाल यह है कि पूजा कैसे करें? कोई ब्राह्मण देवता रखकर कहे, 'हस्ते जलमादाय' ऐसा कीजिए। ऐसा कीजिए। अंगन्यास कीजिए। जनेऊ यहां से वहां कीजिए। फलां ऐसा कीजिए। बोडी को खुजला लीजिए! ये सब करने के लिए कहे? क्या करें? किस तरह से करे? पर मेरे बाप! आप सब तो मेरे हैं इसीलिए कहता हूं। भगवान की पूजा करने के लिए ठाकोरजी कहते हैं, क्षमता अनुसार पूजा करनी चाहिए। जैसी हमारी औकात! कोई द्वारिकाधीश को सुवर्ण सिंहासन चढ़ा दे और हम तुलसीपत्र रखे तो दोनों को वंदन! यही तो पूजा है। 'पूजा मारी मानी लेजो।' 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' की बात करनेवाला योगेश्वर है। तो बाप, क्षमतानुसार पूजन-अर्चन कीजिए।

एक आदमी भगवान की पूजा दो-दो घंटे तक करे! हमें खेत में जाना है। हमें मजदूरी करनी है। हमें रोज पर जाना है। यदि न जाय तो परिवार भूखा मर जाय! तब कृष्ण ऐसा नहीं कहता कि तू एक प्रहर मेरी पूजा कर। पर तेरी क्षमता-औकात अनुसार पूजा कर। पूजा क्षमता अनुसार करनी चाहिए। 'मां नमस्कुरु', मुझे ही नमस्कार कर। कैसी अद्‌भुत बात है! यह महापुरुष है। मुझे ही नमन कर। ऐसा वही कह सकता है। हम उन्हें प्रणाम करते हैं। पर वह चाहे ऐसा प्रणाम कौन-सा? उन्हें दण्डवत् करे वह? उन्हें बार-बार प्रणाम कर चरणस्पर्श करे वह? उठक-बैठक करे वह? 'मैं पापी हूं, मैं पापी हूं!' 'गीता' सुनने के बाद ऐसा बोलना बंद करो! मैं पापी नहीं, मैं तुम्हारा पुत्र हूं। जैसा भी हूं, तुम्हारा हूं। 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातन।' भगवान कहते हैं। तू मेरे पास आ जा। 'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।' चुटकीभर में तुझे साधु बना दूं! तू मुझे नमस्कार कर। हमें करने हैं। हम जिस शास्त्र को जानते हैं उसके अनुसार दण्डवत् करें। यों दूसरे धर्म की पद्धति अनुसार घुटने टेक कर हम प्रणाम करना जानते हैं तो यों करे या तो हाथ जोड़कर प्रणाम करे।

जीवन प्रसन्नता से व्यतीत करना हो तो जहां हो वहीं से कल से नए दिन की शुरूआत करो। यह 'गीता-जयंती' माँ का जन्मदिन है। इस माँ की कोख से हम नया जन्म पाए। जिसमें ममता हो, समता हो, पूजन की क्षमता हो; प्रणाम करने हैं। लेकिन प्रणाम करने के लिए एक ही शर्त है, नम्रता होनी चाहिए। फिर देह झुके, न झुके, कोई चिन्ता नहीं। बिना नम्रता 'नमस्कुरु' संभव नहीं है। शमशाद का एक बहुत पुराना शे'र है -

जो तुझे झुक कर मिलता होगा,
समझना तेरे से बहुत बड़ा होगा।

जिस दिन मैं और आप कृष्ण को इस तरह नमन करना सीख लेंगे उस दिन हमारा कद कृष्ण से भी बड़ा होगा। इसमें हमारे पिता प्रसन्न होंगे। बिना नम्रता के नमस्कार व्यर्थ है। बिना क्षमता, पूजा ठीक नहीं होती। पक्षापक्षी नहीं करनी। बिना समता भक्त नहीं हो सकते। बिना ममता उसके चरणों में मन नहीं लगता। जयसीयाराम।

('गीता जयंती' के अवसर पर ता. २-१२-२०१४ को जोडियाधाम (गुजरात) में मोरारिबापू का वक्तव्य)